सचित्र जीवन साखियां

दस गुरु साहिबान

डा. अजीत सिंघ औलख

सचित्र जीवन साखियां

दस गुरु साहिबान

डा. अजीत सिंह औलख

भा. चतर सिंघ जीवन सिंघ
अमृतसर (पंजाब) भारत।

सचित्र जीवन साखियां

दस गुरु साहिबान

ISBN: 81-7601-752-3

द्वितीय संस्करण मई 2011

भेटा : 225–00

प्रकाशक:

भा. चतर सिंघ जीवन सिंघ

बाज़ार माई सेवां, अमृतसर।

फोन: (0183) 2542346, 2547974, 2557973

फैक्स: (0183) 5017488

E-mail : csjssales@hotmail.com, csjspurchase@yahoo.com
Visit our Website : www.csjs.com

मुद्रकः– जीवन प्रिंटर्ज, अमृतसर। फोनः 2705003

Printed in INDIA
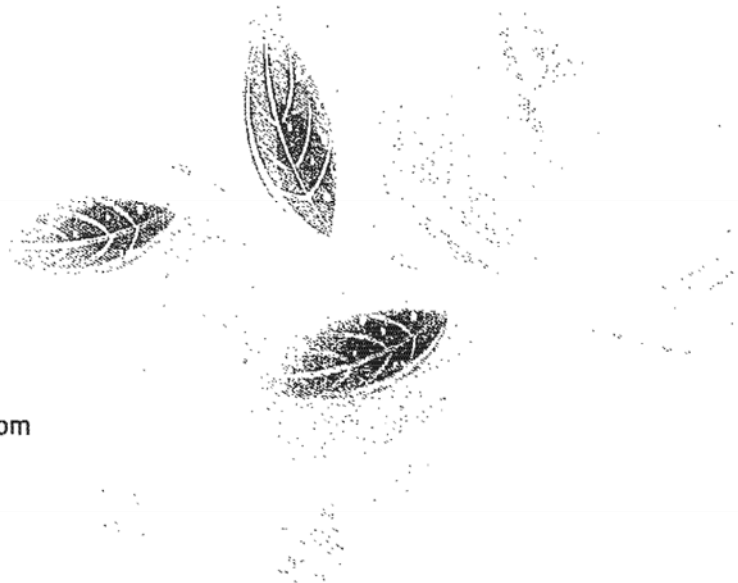
विषय सूची

ੴ

ਸਤਿਗੁਰ ਬਚਨ ਪ੍ਰਤਖ ਜਿਨਿ ਲਿਖਉ

ਲਿਖੇਉ ਗ੍ਰੰਥ

ਭੁਗਤਿ ਭਗਤੀ ਸੋਧੈ

ਗੁਰਪ੍ਰਮਾਣਿ

श्री गुरु नानक देव जी

सतिगुरु नानकु प्रगटिआ मिटी धुंधु जगि चानणु होआ।
जिउ करि सूरजु निकलिआ तारे छपि अंधेरु पलोआ।
सिंघु बुके मिरगावली भंनी जाइ ना धीरि धरोआ।
जिथे बाबा पैरु धरि पूजा आसणु थापणि सोआ।
(भाई गुरदास जी, वार १-२७)

श्री गुरु नानक देव जी का जन्म कार्तिक शुदि पूर्णिमा विक्रमी सम्वत् 1526 अनुसार 20 अक्तूबर, 1469 ईस्वी, तलवंडी राई भोइ ज़िला शेखूपुरा, पाकिस्तान में हुआ। उस भाग्यशाली नगर तलवंडी का नाम तदुपरांत गुरु जी के नाम पर ननकाणा साहिब पड़ गया है।

गुरु नानक देव जी के पिता का नाम महिता कल्याण दास था, परन्तु क्षेत्र में वह महिता कालू कारण ही प्रसिद्ध थे। उनकी माता जी का नाम तृप्ता देवी था एवं उनकी बहन नानकी गुरु नानक देव जी से पांच वर्ष बड़ी थीं।

हमारे देश में बड़े पुत्र के पैदा होने पर बहुत खुशियां मनाईं जाती हैं। जब दाई ने महिता कालू जी को बताया कि उनके घर एक प्रभावशाली एवं अद्‌भुत बालक पैदा हुआ है तो महिता कालू जी बहुत प्रसन्न हुए। दाई ने उन्हें बताया कि बालक के जन्म समय कमरे में एक अद्‌भुत प्रकाश हुआ और कुछ खुशी से भरी विस्मादमयी आवाजें बालक का स्वागत करती सुनी गईं हैं।

महिता कालू जी ने भी बाल गुरु की जन्म-पत्री तैयार करने हेतु ज्योतिषी पंडित हरदयाल को अपने पास बुलाया। जब उस पंडित ने बालक के दर्शन किए तो उसने अद्‌भुत प्रकार का सुख एवं सुकून अनुभव किया। काफी देर तक बालक में दिव्य-ज्योति को देखता हुआ वह महिता कालू जी को कहने लगा, "महिता जी आप बड़े भाग्यशाली हो, जिसके घर में परमात्मा रूप पुत्र पैदा हुआ है, यह पातशाहों का सच्चा पातशाह होगा और कुल दुनिया में इसका राज होगा, सब धर्मों वाले इसके सच्चे धर्म को मानेंगे। यह बड़े-बड़े डाकू एवं अत्याचारियों का दिल जीत लेगा और
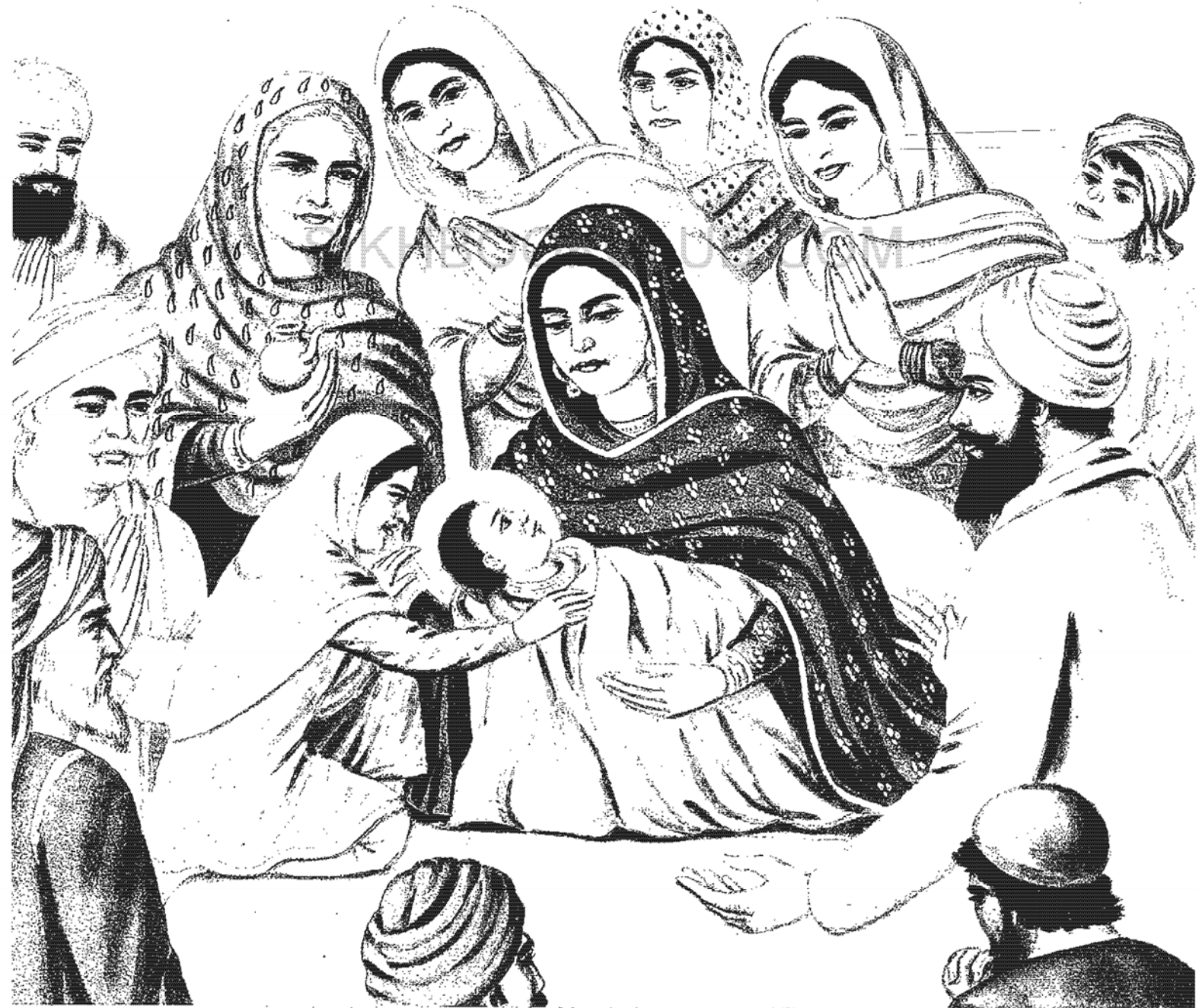
उन्हें सत्य के मार्ग पर लगाएगा। यह एक न्यारा ही धर्म चलाएगा जो युगों-युगों तक अटल रहेगा।"

गुरु नानक देव जी बचपन में ही एक अनोखे बालक थे। उनकी खेलें एवं खिलौने भी सामान्य बच्चों से अलग थे। वह बहुत छोटी आयु में ही परमार्थ की बातें करने लग गए थे। जो भी व्यक्ति परमात्मा बारे, मानव जीवन बारे अथवा मानव के जन्म-मृत्यु बारे बातें करता वह उन्हें बहुत अच्छा लगता। साधू-महात्मा इत्यादि भी उन्हें बहुत प्रिय लगते। ऐसे लोगों की सेवा करना वह बहुत उत्तम समझते और उनकी भोजन-पानी से सेवा भी करते।

जब बाल गुरु छः वर्ष के हुए तो महिता कालू जी ने उन्हें गांव के पांधे गोपाल दास के पास पढ़ने के लिए भेज दिया। पंडित गोपाल दास पंजाबी, हिन्दी एवं संस्कृत का विद्वान था। गुरु जी बड़े चाव एवं खुशी से पढ़ते थे और कुछ समय में ही उन्होंने सब कुछ सीख लिया जो कि पांधे
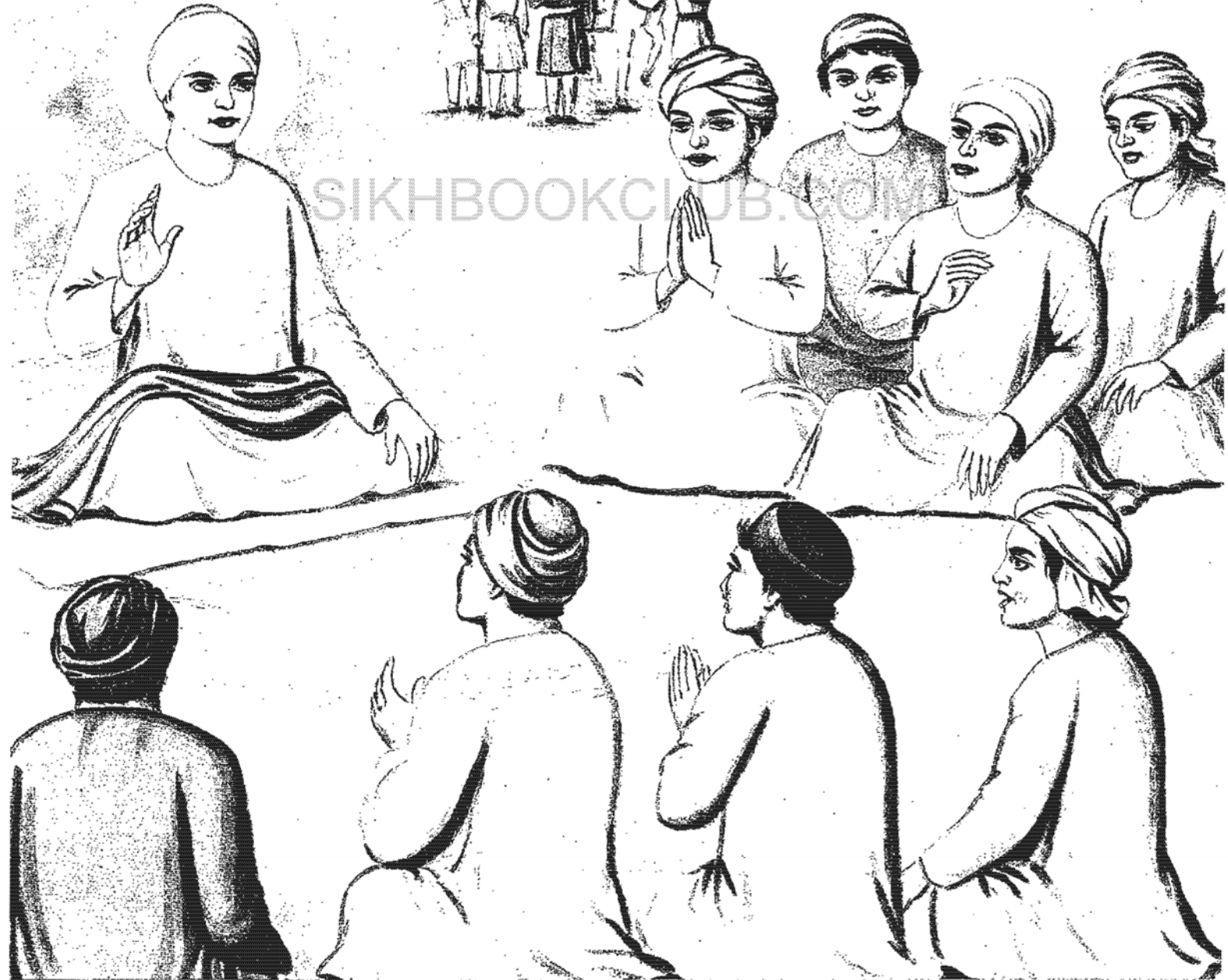
को आता था। पंडित अपने शिष्य की अद्‌भुत योग्यता देखकर बहुत हैरान था। वह कहता, "मैं तो विश्वास नहीं कर सकता कि इतनी छोटी आयु में बालक इतना होशियार और लियाकत वाला हो सकता है। जो कुछ भी मैं इसे सिखाता हूँ, यह सब कुछ तुरंत सीख लेता है जैसे कि पहले ही जानता हो। मैं तो काफी समय से बच्चों को पढ़ा रहा हूँ, परन्तु ऐसा शिष्य तो मुझे कभी नहीं मिला।"

एक दिन पांधे ने देखा कि गुरु जी अपनी पट्‌टी लिख रहे थे। जब काफी समय तक वह पांधे के पास न आए तो पांधा स्वयं उठकर उनके पास गया और पट्‌टी दिखाने के लिए कहा। गुरु जी ने पट्‌टी उन्हें सौंप दी। पांधा पट्‌टी देख कर हैरान रह गया। उस पट्‌टी पर बारीक कलम से छंदबद्ध में बहुत कुछ लिखा हुआ था। पांधा पढ़ता-पढ़ता मुग्ध हो गया। सारी पट्‌टी पर सिहरफी की तरह पंजाबी के पैंतीस अक्षरों अनुसार पैंतीस अक्षरी लिखी हुई थी।

जब गुरु जी ने पंजाबी, हिन्दी एवं संस्कृत की पढ़ाई खत्म कर ली तो उन्हें मौलवी के पास फारसी की पढ़ाई हेतु दाखिल करवाया गया। उस काल में इस्लामी हकूमत होने के कारण दफ्तरी पत्र-व्यवहार की भाषा फारसी थी। इसलिए फारसी पढ़े ही वास्तविक अर्थों में पढ़ा-लिखा समझा जाता था। बाल गुरु की भी फारसी
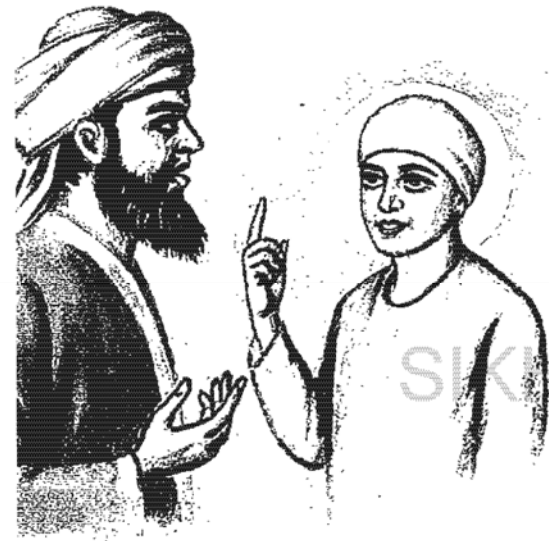
की पढ़ाई करने में बड़ी दिलचस्पी थी। इसलिए उन्होंने फारसी भी शीघ्र ही पढ़ ली। कुछ ही समय में बाल गुरु अपने सब साथियों से आगे निकल गए थे।

जब गुरु जी नौ वर्ष के हो गए तो जनेऊ संस्कार बारे सलाह की गई। नियत दिन घर के पुरोहित पंडित हरदयाल पहुंच गए। घर में एक ऊंचे स्थान पर एक चटाई बिछाई और कुछ मंत्र पढ़कर पंडित ने उसके इर्द-गिर्द एक रेखा खींची और आप चटाई पर विराजमान हो गए। गुरु जी को पंडित के सम्मुख बैठा दिया गया। सब रस्में पूरी करके पंडित हरदयाल ने गुरु नानक के गले में जनेऊ डालने हेतु अपनी बाजू ऊंची की। परन्तु उनकी हैरानी की कोई सीमा न रही, जब उन्होंने देखा कि गुरु जी ने अपने हाथ से पुरोहित की जनेऊ वाली बाजू पीछे धकेल दी और जनेऊ पहनने से इन्कार कर दिया। वह कहने लगे, ''पंडित जी! पहले मुझे बताए कि जनेऊ पहनने का क्या लाभ है? पहले मुझे विस्तारपूर्वक समझाओ और फिर जनेऊ मेरे गले में डालो।

मुझे ऐसा जनेऊ चाहिए जो कि मेरी आत्मा के साथ परलोक में भी मेरा साथ दे, यदि आपके पास कोई ऐसा जनेऊ है तो वह अवश्य मुझे डाल दो।'' पंडित निरुतर हो गया।

एक दिन पिता महिता जी ने सोचा कि उनका पुत्र व्यर्थ होने के कारण उदास रहता है, इसे जंगलों-उजाड़ों में भ्रमण का बहुत शौक है, जिससे हम इसे वर्जित करते रहते हैं। इसलिए क्यों न कोई ऐसा प्रबंध सोचा जाए कि हमारा पुत्र स्वयं को बेकार न समझे और कुछ काम भी करता रहे। इसलिए महिता जी ने यह सलाह की कि पुत्र नानक को भैंसे चराने का दायित्व सौंप दिया

जाए। इस बारे जब उन्होंने अपने पुत्र से बात की तो वह तुरंत मान गए। वह नित्य भैंसों को जंगल में छोड़ देते और स्वयं समाधि लगाकर किसी पेड़ के नीचे बैठे रहते।

एक दिन जब वह प्रभु से सुरति लगाकर लेटे हुए थे तो काफी समय बीत जाने के कारण पेड़ की छाया हट गई और उनके मुखमण्डल पर धूप पड़ने लग गई। वहां रहते एक फनीयर सांप ने जब गुरु जी के चेहरे पर धूप पड़ती देखी तो उसने फन फैला कर उनके चेहरे पर छाया कर दी।

उस समय ही राय बुलार अपने अहलकारों सहित अपने बाहरी खेतों को देखकर अपने गांव को आ रहे थे। जब उन्होंने सांप को फन फैलाए देखा तो वह स्तब्ध हो गए। उन्होंने वहां अपना घोड़ा रोका और कहने लगे, "इस फनीयर सांप ने तो नानक को काट लिया लगता है। इसलिए वह उसके सिर पर बैठा है और नानक भी हिलता-जुलता नहीं लगता।" उसने एक नौकर को छड़ी लेकर उधर जाने के लिए कहा। जब सांप ने देखा कि उसके पास कोई आ रहा है तो वह तुरंत दूर खिसक गया। इतनी देर में राय बुलार भी गुरु जी के पास पहुंच गया। उसने जब गुरु जी को हिलाया तो वह 'धन्य निरंकार' कहते उठकर बैठ गए। राय बुलार बहुत चकित हुआ। वह कहने लगा, "देखो! नानक को जंगल के जहरीले एवं भयानक जानवर भी प्रेम करते हैं। नानक के मुखमण्डल पर पड़ रही सूर्य की
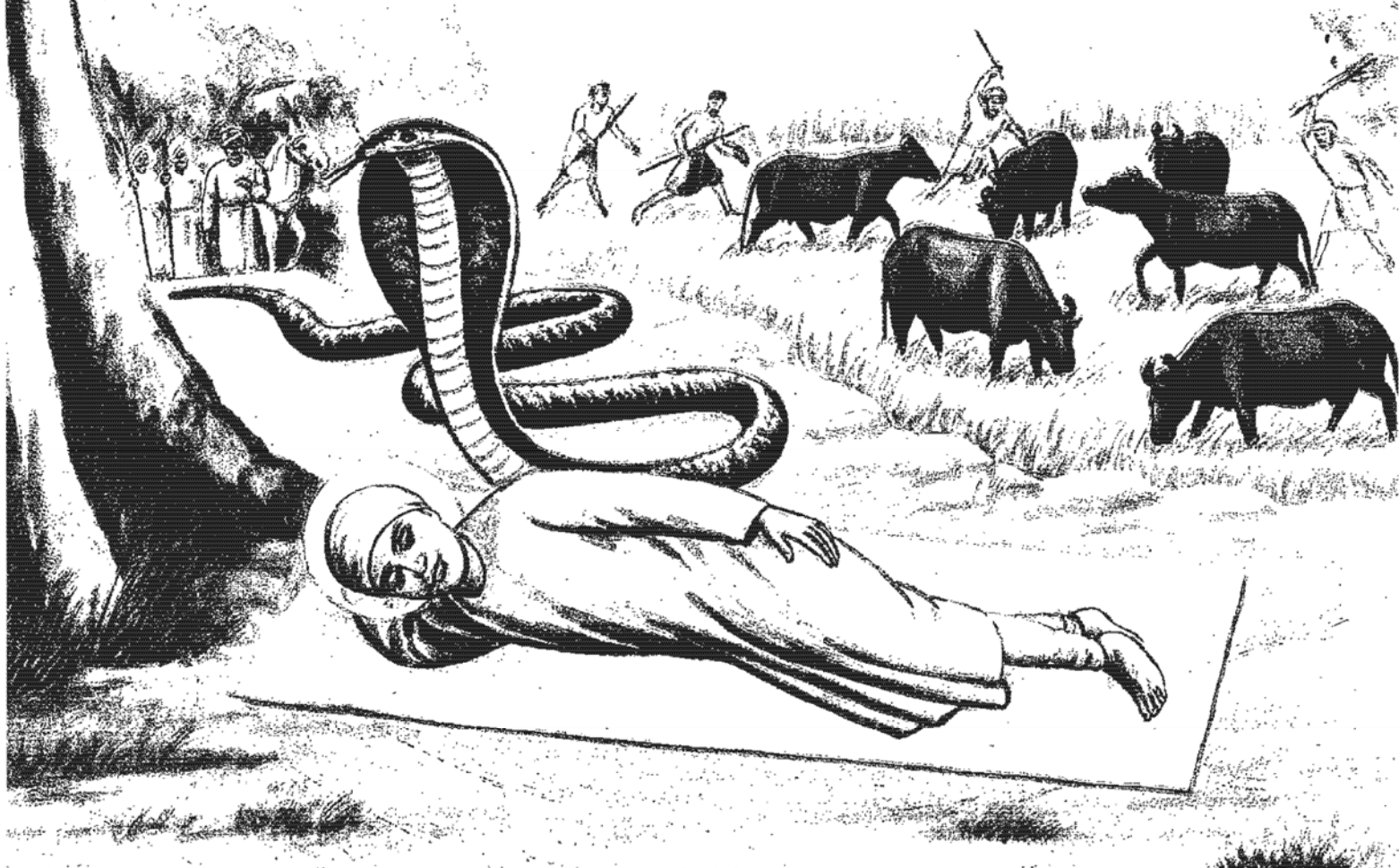
धूप इस नाग से भी सहन नहीं हुई और उसने सूर्य की किरणों में अपना फन फैला कर इसके चेहरे को छाया की है।"

एक दिन महिता कालू जी ने गुरु जी को बीस रुपए दिए और कहा, "पुत्र! कोई अच्छा तथा खरा सौदा करो, जिससे अच्छा लाभ हो। मैं तेरे साथ भाई बाले को भेजता हूँ, आप कोई ऐसा माल खरीद कर लाओ जो यहां बेचकर उत्तम लाभ प्राप्त हो सके।"

गुरु नानक ने पिता जी की बात स्वीकार कर ली और बीस रुपए लेकर एक निकटवर्ती शहर चूहड़काणे की ओर चल दिए। चूहड़काणे के मार्ग पर एक घना कुंज आता था। जब गुरु जी उधर से गुजरने लगे तो उन्होंने वहां एक साधुओं का डेरा देखा। साधुओं की बातों से उन्हें पता चला कि वे कई दिनों से भूखे थे। गुरु जी को उन पर बहुत दया आई और उन्होंने तुरन्त दृढ़ इरादा बना लिया कि इन साधुओं की सहायता की जाए। उन्होंने सोचा कि इससे खरा और सच्चा सौदा अन्य क्या हो सकता है।

गुरु जी भाई बाले को लेकर चूहड़काणे चले गए। वहां उन्होंने भोजन पदार्थ एवं वस्त्र खरीदे। वहां ही आटा देकर एक झीवरी से रोटियां पकवा लीं और दाल तैयार करवा ली। एक छकड़ा
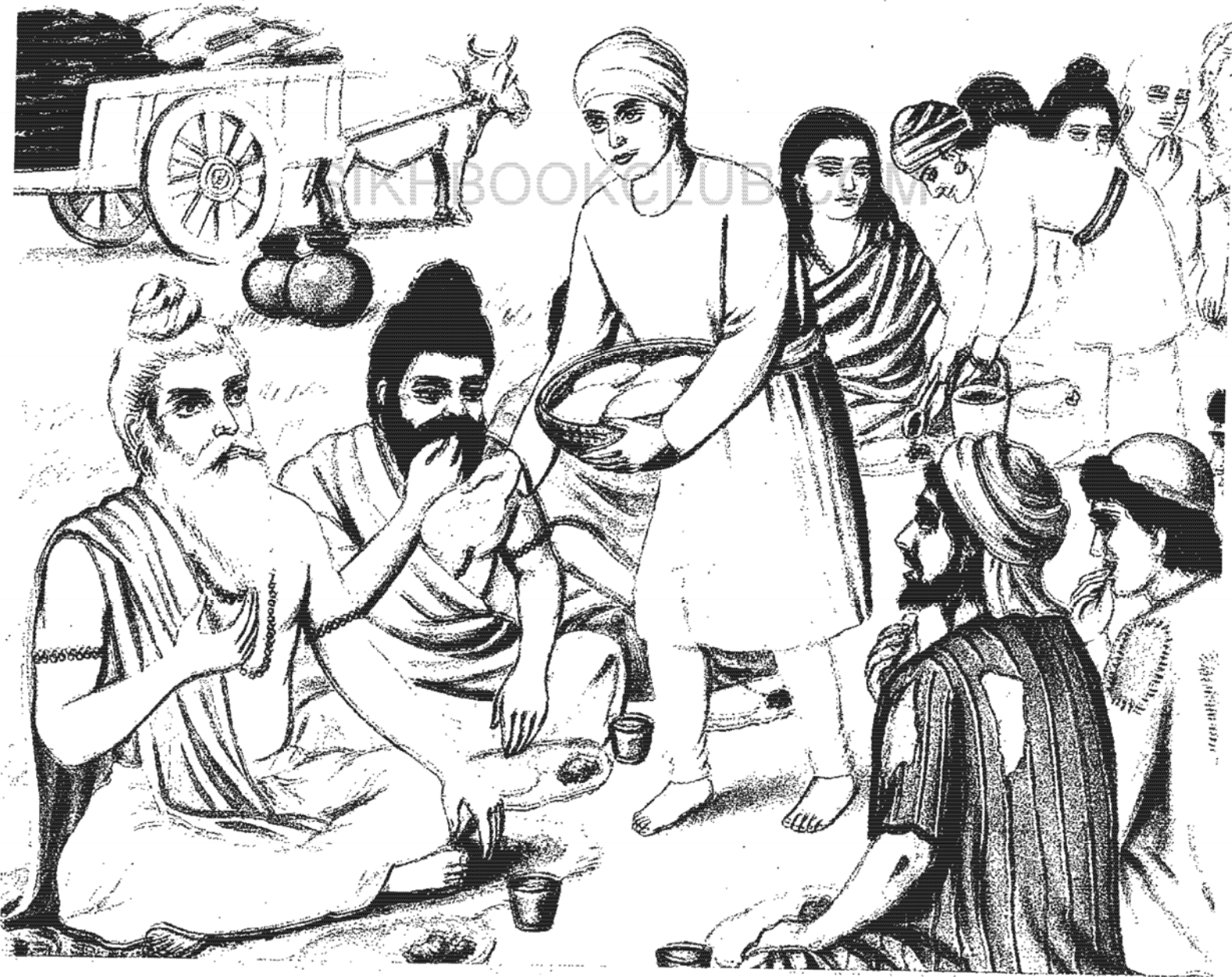
उन्होंने किराये पर लिया और उस पर भोजन-पदार्थ, वस्त्र और दाल-रोटी लाद कर साधुओं की कुंज पर पहुंच गए। उन्होंने साधुओं को दाल-रोटी अपने हाथों से खिलाई और पहनने हेतु उन्हें वस्त्र दिए।

गुरु जी कुछ गंभीर रहने लगे। वह हर समय प्रभु से सुरति लगाए कुछ गहरे विचारों में लीन रहते। एक दिन उनके पिता ने गांव के वैद्य को बुला लिया। कुछ देर बाद उसने गुरु जी को हाथ दिखाने के लिए कहा। गुरु जी ने जब हाथ आगे बढ़ाया तो वह नाड़ी पकड़ कर देखने लग गया। गुरु जी ने फिर वैद्य की ओर ध्यान से देखा और मुस्करा कर कहने लगे, "वैद्य जी, आप क्या देख रहे हैं? मेरे शरीर को कोई रोग नहीं है। जो वास्तविक रोग है, वह आपकी समझ से बाहर है।"

जब वैद्य ने गुरु जी की यह बात सुनी तो उसने कहा, "नानक को कोई रोग नहीं, वह बिल्कुल ठीक है, जो इसे वास्तविक दु:ख है उसका मेरे पास इलाज नहीं।"

श्री जैराम ने शीघ्र ही गुरु जी हेतु नौकरी ढूंढ ली और उन्हें सुल्तानपुर लोधी बुला लिया। गुरु
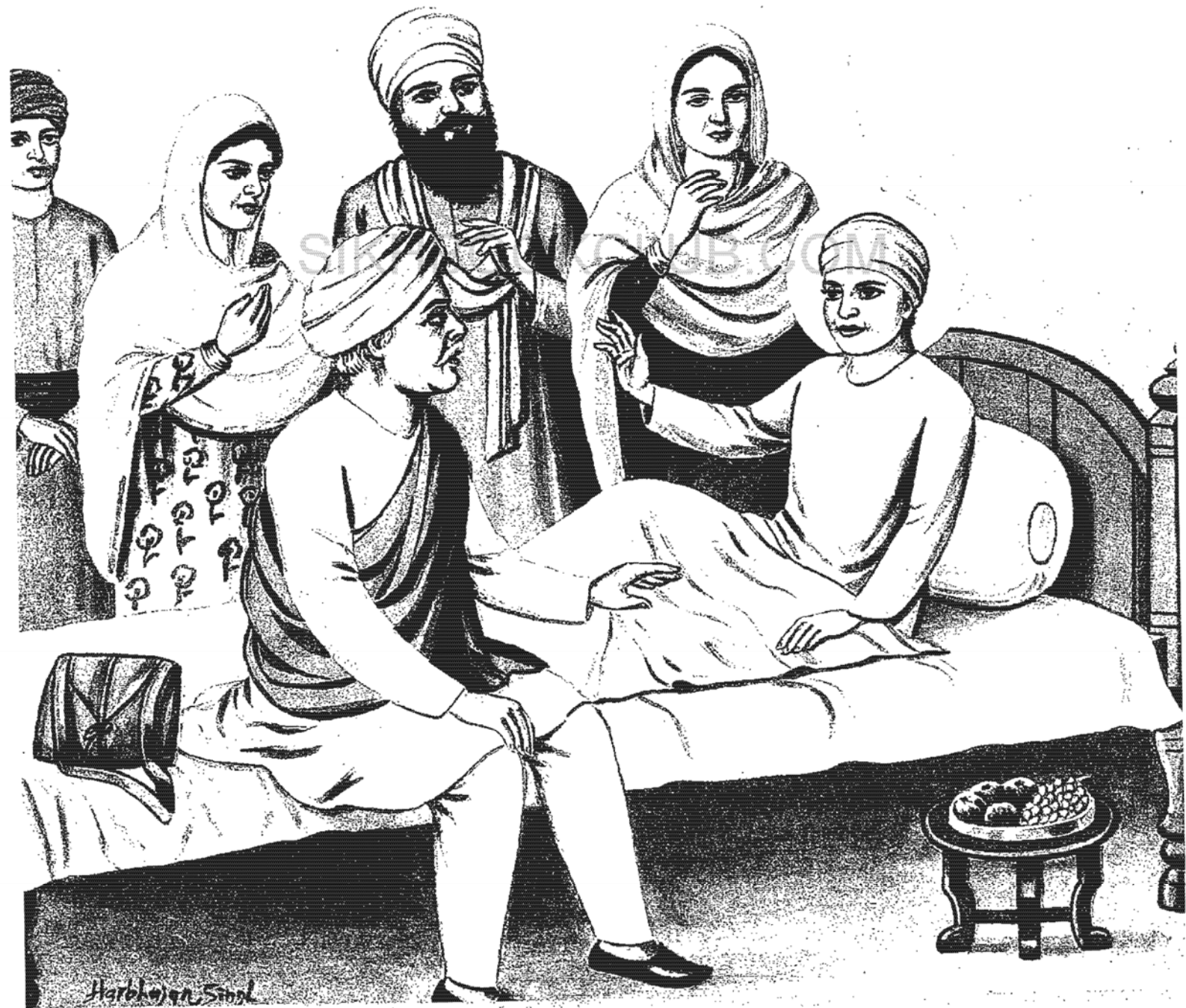
जी के वहां पहुंचने पर उन्हें नवाब दौलत खां लोधी के मोदीखाने का मोदी लगवा दिया। नवाब ने उनका वेतन एवं रसद नियत कर दी। गुरु जी के स्वभाव के मुताबिक होने के कारण, उन्होंने अपने नवीन कार्य को बड़े उत्साह से आरम्भ किया। यहां वह पूरा तोलते थे और प्रत्येक व्यक्ति से बड़े प्रेम एवं आदर से पेश आते थे। उनके समक्ष बड़ा-छोटा सब बराबर थे। विनम्र स्वभाव होने के कारण वह अपने भाग की रसद एवं वेतन का भाग निर्धनों में मुफ्त बांट देते थे। वह अपना दायित्व बड़ी योग्यता से निभा रहे थे और नवाब भी उनके काम पर बहुत प्रसन्न हुआ।

गुरु जी अपने इस काम के दौरान प्रभु-भक्ति की ओर से पीछे नहीं हटे थे। वह प्रातःकाल उठकर वेईं नदी पर चले जाते थे और स्नान करते थे और फिर एक बेरी के पेड़ के नीचे बैठकर प्रभु से सुरति लगाकर अन्तर्ध्यान हो जाते थे। फिर वह प्रभु की प्रशंसा में मधुर गीत गाते और सबको कृतार्थ करते।

बटाला का रहने वाला और पखोके-रंधावे का पटवारी बाबा मूलचन्द, श्री जैराम का परिचित
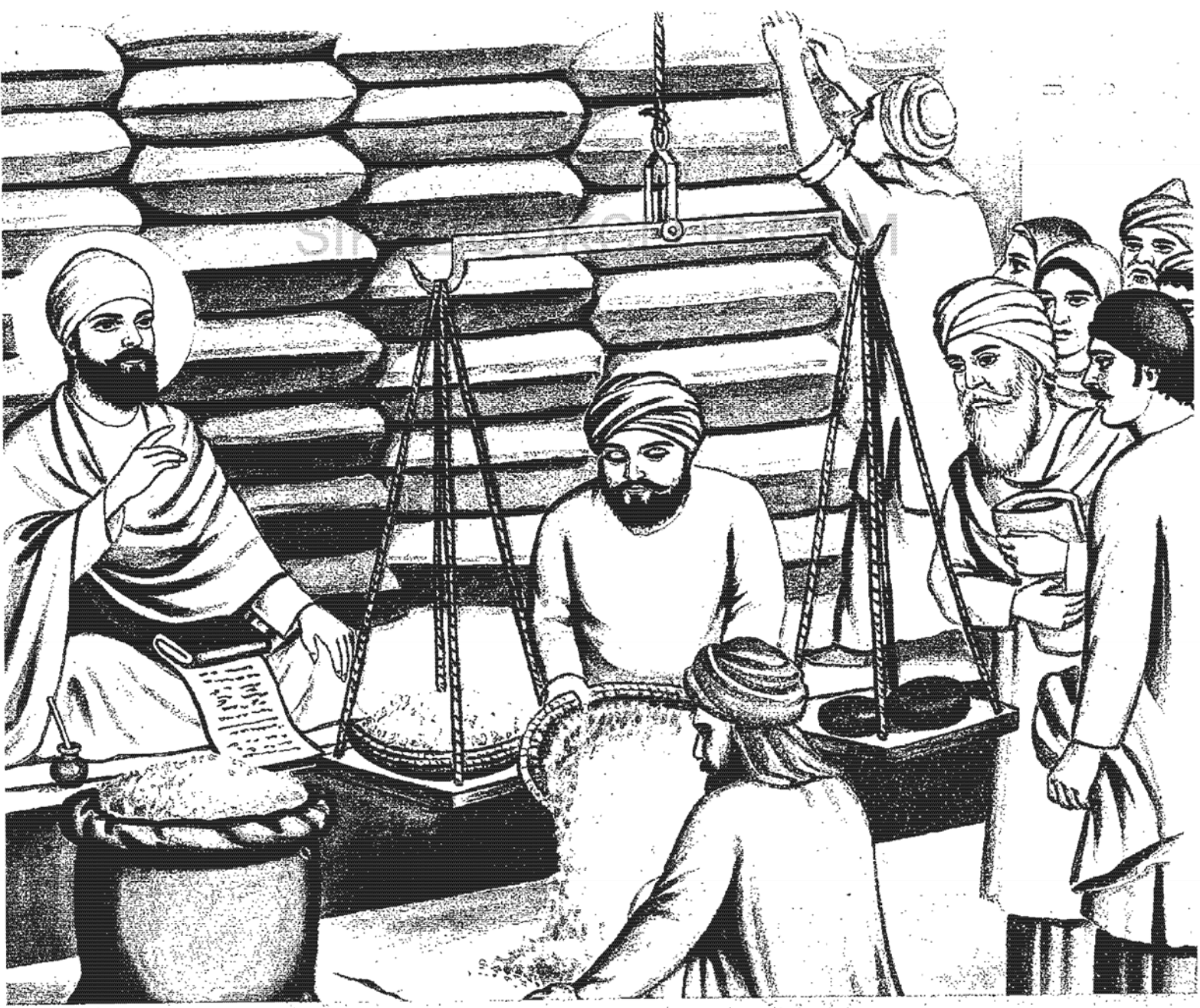
था। उनकी एक पुत्री सुलखनी बड़ी सुन्दर एवं सुशील थी। श्री जैराम ने रिश्ते की बात चलाई तो बाबा मूलचन्द तुरन्त सहमत हो गए, क्योंकि मोदीखाने के अधिकारी से ऊंचा रिश्ता अन्य कौन-सा मिल सकता था।

जब गुरु नानक देव जी से विवाह बारे पूछा तो उन्होंने कहा, "आप मुझे कोई संन्यासी समझते हो? गृहस्थ आश्रम में रहकर भी प्रभु की भक्ति हो सकती है और जन सेवा की जा सकती है, परन्तु पहले मेरा कर्त्तव्य अपनी पत्नी की तरफ होगा और फिर किसी अन्य तरफ।" गुरु जी की बारात भी विलक्षण थी, इसमें यदि राय बुलार जैसे बड़े-बड़े धनवान शामिल थे तो साथ ही लंगोटियों वाले साधू तथा भगवे वस्त्रों वाले संत भी मौजूद थे। बटाले के लोग ऐसी बारात को देखकर हैरान हो रहे थे। जब विवाह धूमधाम से हो गया तो गुरु जी माता सुलखनी को लेकर सुल्तानपुर लोधी आ गए। यहां उन्होंने अपना अलग मकान ले लिया। उनके माता-पिता कुछ दिन ठहर कर वापिस तलवंडी चले गए।

यहां ही उनके घर दो साहिबज़ादे बाबा श्री चन्द भाद्रों शुदि 9 सम्वत् 1551 और बाबा लखमी दास 19 फाल्गुन सम्वत् 1553 को पैदा हुए।

गुरु जी फिर जब किसी को उपदेश देते थे तो वह स्वयं वाणी की रचना करते थे जो कि किसी विशेष राग अनुसार गायन होती थी। वह जब सुल्तानपुर लोधी में सत्संग करते थे तो स्वयं गा कर वाणी सुनाते थे। गुरु जी ने स्वयं एक छः तारी सारंगी तैयार की जिसे वह रबाब कहते थे।

जब गुरु जी का विवाह हुआ तो मरदाना गुरु जी के माता-पिता के साथ गुरु जी को मिलने आया। मरासी विवाह के पश्चात हमेशा कोई उपहार मांगते हैं। मरदाने ने भी गुरु जी से विवाह की खुशी के तौर पर कोई उपहार मांगा। गुरु जी ने उपहार के तौर पर भाई मरदाने को वह छः तारी रबाब दिया। मरदाना वह रबाब देख कर बहुत प्रसन्न हुआ चूंकि ऐसा साज़ उसने पहले नहीं देखा था। गुरु जी ने फिर मरदाने को आदेश किया कि वह पक्का ही उनके साथ रहेगा। मरदाने को और क्या चाहिए था, वह तो पहले ही काफी समय गुरु साहिब से दूर रहने के कारण बड़ा उदास था।

गुरु जी का सत्संग एवं कीर्त्तन सुनकर उनके शिष्यों की संख्या में वृद्धि होती गई। गुरु जी के शिष्यों को 'सिक्ख' कहते थे।

एक दिन जब गुरु जी स्नान करने गए तो पहले वाले स्थान पर स्नान करने की बजाय नदी की पूर्व दिशा की ओर जाकर काफी दूरी पर स्नान करने गए। उनके कुछ सिक्ख भी उनके साथ थे। गुरु जी ने वस्त्र उतारे और नदी में प्रवेश कर गए। उनके सिक्ख काफी देर देखते रहे कि गुरु जी

अब भी निकले, अब भी आए, परन्तु उन्हें बहुत हैरानी हुई जब गुरु जी सुबह तक उन्हें नजर न आए। उनके सिक्खों ने भागकर भाई जैराम तथा बेबे नानकी को सूचित किया। सारे शहर में शोर मच गया और लोग एक दूसरे के आगे भागते नदी पर पहुंच गए। नवाब को भी इस बारे खबर पहुंच गई। उसने तैराक एवं कई प्रकार के जाल भेजे ताकि वह गुरु जी को ढूंढ लें, परन्तु तीन दिन तक गुरु साहिब बारे पता न लगा। तीसरे दिन लोग क्या देखते हैं कि उस स्थान पर जहां से गुरु जी नदी में प्रवेश कर गए थे, वह वहां समाधि लगाए बैठे थे। जब लोगों का शोर सुना तो वह उठ बैठे और कहने लगे, "परमात्मा एक है, न कोई हिन्दू न मुसलमान।"

एक दिन काजी ने नवाब को कहा कि गुरु नानक यह कहते हैं कि न कोई मुसलमान है और न कोई हिन्दू है और यदि उन्हें इन दोनों धर्मों में कोई अन्तर दिखाई नहीं देता तो फिर वह हमारे साथ मस्जिद में नमाज़ पढ़ें। नवाब को काजी की यह बात पसंद आ गई। उन्होंने गुरु जी को सन्देश भेजा कि आज वह हमारे साथ मिलकर नमाज़ पढ़ें। गुरु जी ने उनकी बात मान ली और वह भी मस्जिद में पहुंच गए। काजी और नवाब वहां पहले ही पहुंच चुके थे। जब नमाज़ आरम्भ हुई तो काजी व नवाब नमाज़ के उसूलों अनुसार नमाज़ पढ़ते रहे, परन्तु गुरु जी चुप खड़े रहे। जब नमाज़ समाप्त हुई तो नवाब एवं काजी दोनों क्षुब्ध होकर कहने लगे, "आप ने यहां पहुंच कर भी हमारे साथ नमाज़ नहीं पढ़ी है।"

उनकी यह बात सुनकर गुरु जी मुस्कुराए और कहने लगे, "मैं नमाज़ किसके साथ पढ़ता, हे काजी साहिब! आप तो उस समय यहां नहीं थे।" काजी हैरान होकर कहने लगा, "मैं यहां क्यों नहीं था, मैंने आपके सामने नमाज़ पढ़ी है और नवाब जी भी इसके गवाह हैं।" गुरु जी फिर कहने लगे, "यह मैं मानता हूँ कि शारीरिक रूप से आप यहां ही थे और आप झुकते एवं उठते भी रहे हो, परन्तु आपका मन यहां नहीं था, वह आपके घर घूम रहा था। आपकी घोड़ी ने बछड़े को जन्म दिया है, आपका मन उस बछड़े में था कि वह कहीं उछलता-उछलता कुएं में न गिर जाए। इसलिए जब आप यहां है ही नहीं थे तो मैं आपके साथ नमाज़ कैसे पढ़ता?" गुरु जी के इन सत्य वचनों को सुनकर काजी लज्जित हो गया और कहने लगा, "चलो यदि मैं यहां नहीं था तो आप नवाब साहिब के साथ नमाज़ पढ़ लेते।"

गुरु जी फिर मुस्कुराए और नवाब की ओर देखकर बोले, "नवाब साहिब भी उस समय यहां कब थे, आपका मन तो सुल्तानपुर लोधी में आपके घर में ही घूम रहा था, परन्तु नवाब साहिब तो हिन्दुस्तान से भी बाहर काबुल में घोड़े खरीद रहे थे, फिर बताओ वह तो काबुल पहुंचे थे, मैं नमाज़ किसके साथ पढ़ता?"

कुछ दिन सुल्तानपुर लोधी में कीर्त्तन का प्रवाह चला कर और नगर वासियों को सत्य धर्म का उपदेश देकर गुरु जी संसार का कल्याण करने हेतु चल दिए। उन्होंने अपने इस उद्देश्य बारे बेबे नानकी एवं पत्नी सुलखनी जी को जब बताया तो वह बहुत उदास हो गईं। बेबे नानकी का प्रिय भाई उसकी आँखों के समक्ष ही एक पूजनीय हस्ती बन गया था। राय बुलार एवं बेबे नानकी पहले दो व्यक्ति थे जिन्हें यह पता लग गया था कि नानक निरंकारी रूप है और वह इस जलती दुनिया

को शांत करने हेतु आए हैं। इसलिए उसे यह गर्व था कि उसका भाई अकारथ ही परिवार को छोड़ कर नहीं जा रहा था अपितु वह दुनिया को प्रेम की शिक्षा देने जा रहे हैं।

सुल्तानपुर लोधी को अलविदा कह कर गुरु जी एक लम्बी यात्रा पर चल पड़े। भाई मरदाना उनके साथ था। इस यात्रा का पहला पड़ाव उन्होंने सैदपुर, जिसे बाद में ऐमनाबाद कहा जाता था, जाकर किया। गुरु जी ने एक नवीन प्रकार का लिबास पहना था और भाई मरदाने ने ऐसे ही इस विलक्षण लिबास के साथ एक विलक्षण साज़ भी उठाया हुआ था। जब वह चलते जा रहे थे तो गुरु जी ने देखा कि एक कारीगर अपने काम में मग्न कृषि-पालन से संबंधित औजार बनाने में मस्त था। गुरु जी वहां ही खड़े हो गए और भाई मरदाने को कहने लगे, "हमें आज हमारा पहला सिक्ख मिल गया है, इस मनुष्य की ओर देखो, यह अपने काम में इतना लीन है कि इसे शेष दुनिया का कोई भी एहसास नहीं। जैसे इस श्रमिक ने अपने श्रम में मन लगाया है और अपने बाहरी माहौल को भूल गया है, यदि ऐसे ही मनुष्य अपनी वृत्ति प्रभु के शब्द से जोड़े तो वह प्रभु को पा सकता है। आज हमारा पहला पड़ाव यहां ही होगा।"

सैदपुर में ही मलिक भागो, वहां के नवाब का प्रभारी था, वह सरकारी शह पर अत्यंत जुल्म करके धन कमाता था और स्वयं को खुद ही भगवान समझता था। अपने आपको श्रेष्ठ बताने हेतु उसने एक दिन ब्रह्म-भोज किया और अपने अहलकारों से कहा कि हर संत-महात्मा इस भोज को खाने हेतु आए। भाई लालो व गुरु जी को भी यह सन्देश पहुंचा परन्तु गुरु जी ने जाने से स्पष्ट इन्कार कर दिया। मलिक भागो ने बड़े प्रयास किए कि वह गुरु जी को अपने ब्रह्म-भोज पर ले आए, परन्तु गुरु जी किसी तरह भी न माने।
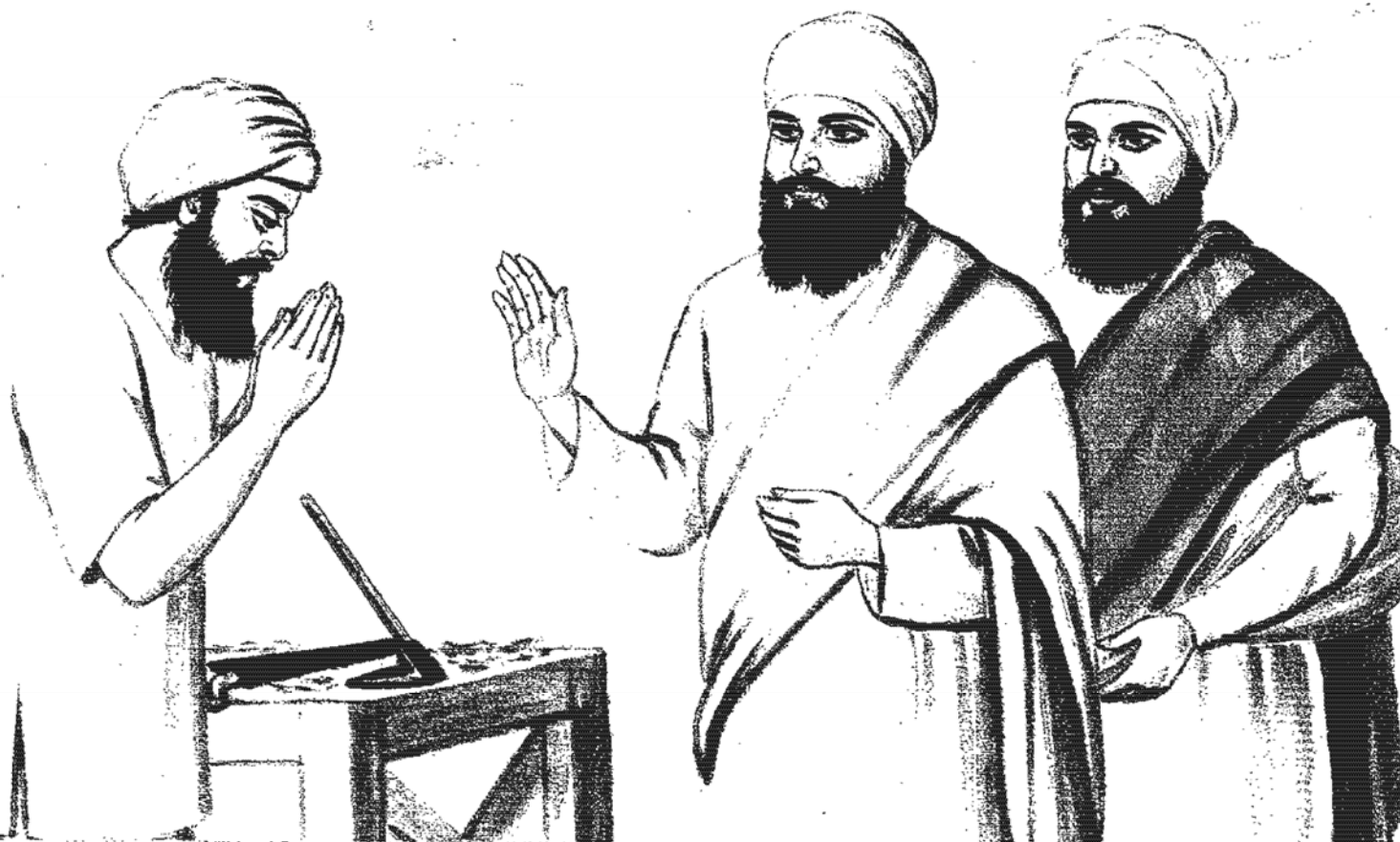
इस तरह जब गुरु जी ने मलिक भागो के छत्तीस पदार्थों को खाने से इन्कार कर दिया और उन्हें विशेष तौर पर बुलाने आए मलिक भागो के दूतों को यह कह भिजवाया कि मलिक जी के रक्त से लथपथ पदार्थों से मुझे भाई लालो की सूखी रोटी पसंद है तो मलिक भागो बहुत क्रोध में आ गया। उसने अपने नौकरों को आदेश किया कि वह किसी भी ढंग से गुरु नानक को उस ब्रह्म-भोज पर ले आएं और उसे बताए कि उसके पकवान में कैसे रक्त भरा था। जब गुरु जी को यह सन्देश मिला तो वह भाई लालो एवं अपने अन्य श्रद्धालुओं को लेकर मलिक भागो के ब्रह्म-भोज पर पहुंच गए।

फिर मलिक भागो क्रोध में आ गया और उसने गुरु जी से कहा, "आप ने मेरे पकवान को रक्त से भीगा कहा है, जबकि इसकी तैयारी में मैंने कई मण घी लगा दिया है।" गुरु जी भी फिर तेज में आ गए और वह उठकर कहने लगे, "इसमें क्या शक है कि गरीब की मेहनत की कमाई अमृत का रूप है और उच्च जाति के जुल्म व अत्याचार से छीनी रोटी जो कितने ही लोगों के रक्त को चूस कर बनी है, रक्त के घूंटों से कैसे कम है। इसलिए मैं दावे से कह सकता हूँ कि आपके घी से भीगे पदार्थों में रक्त है और कोदरे की रोटी में दूध जैसा अमृत है।"

उस समय भाई लालो के घर से कोदरे की रोटी मंगवाई गई और मलिक भागो के उत्तम पकवान भी एक चांदी के थाल में डालकर आ गए। गुरु जी ने एक हाथ में कोदरे की सूखी रोटी पकड़ ली और दूसरे हाथ में मलिक भागो का मालपूड़ा पकड़ लिया। फिर सबके सामने उन्होंने
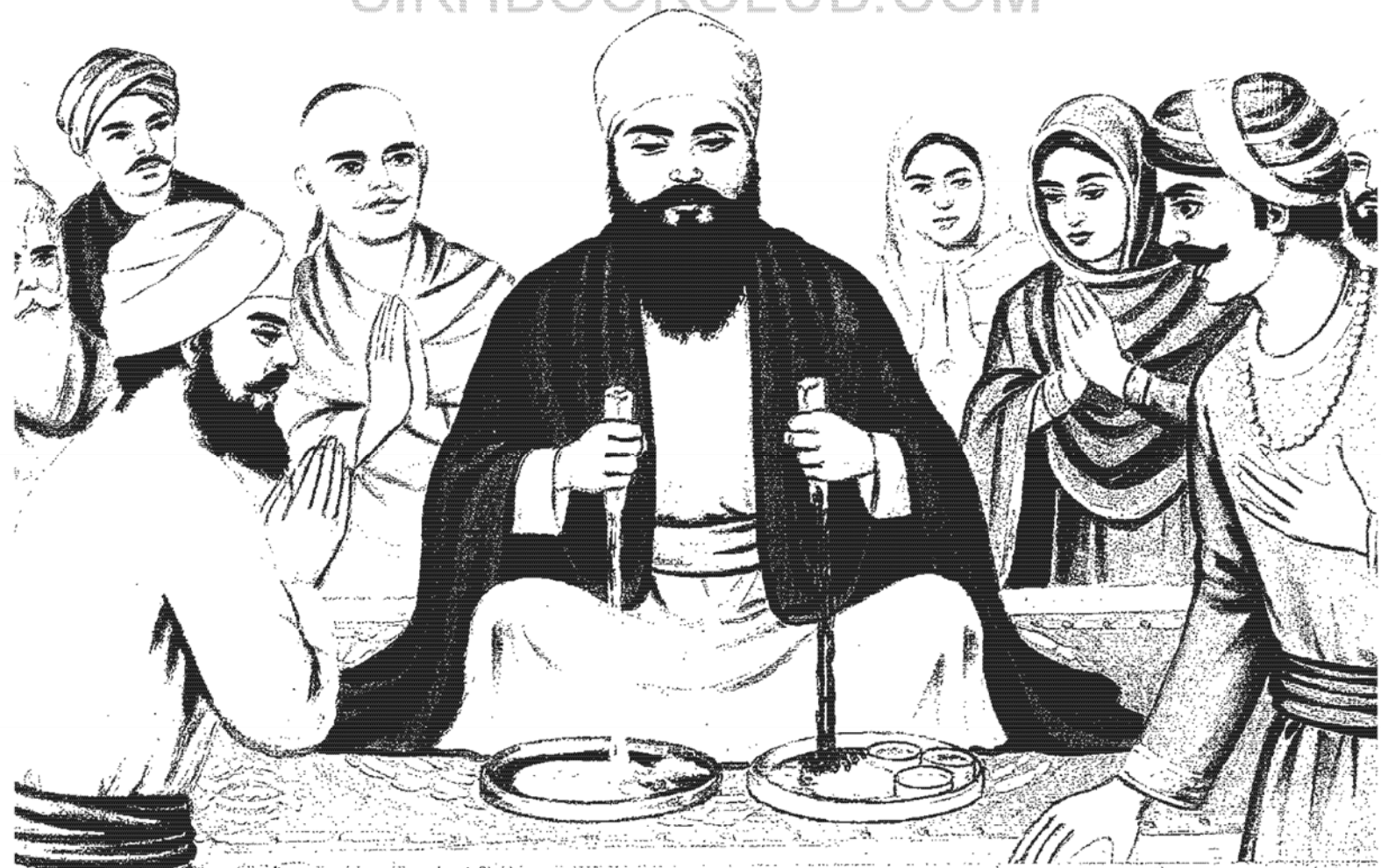
दोनों हाथों को दबाया। भाई लालो की रोटी में से दूध निकला और मालपूड़े में से रक्त की बूंदें धरती पर गिरीं। अब तक वहां हज़ारों लोग इकट्ठे हो चुके थे। सब ने यह दृश्य अपनी आँखों से देखा।

जब गुरु जी कुरुक्षेत्र पहुंचे तो एक सरोवर पर असंख्य साधू स्नान कर रहे थे। उन्होंने अपने सिक्खों से कहा कि वह कोई देग लेकर आएं और उस में पानी डालकर एक चूल्हा बनाकर ऊपर रख दें। साधुओं ने देखा कि सूर्य ग्रहण के समय कोई भोजन पका रहा है तो वह भागते हुए आ गए। वे बड़े आक्रोश में कहने लगे, "यह क्या रखा है?" गुरु जी ने कहा, "मांस पका रहे हैं।" मांस का नाम सुनकर तो साधू और भी आगबबूला हो गए और कहने लगे, "आप ने इस स्थान को भ्रष्ट कर दिया है, अब तो कहर हो जाएगा और सब कुछ तबाह हो जाएगा।" गुरु जी शांत बैठे रहे और फिर कहने लगे, "कुछ नहीं होगा, आप झूठे अंधविश्वासी हो, आग जलाना कोई पाप नहीं, मानव आहार हेतु आग जलानी पड़ती है।"

गुरु जी नाम-दान के खुले भण्डार बांटते और प्रेम की जीत प्राप्त करते हरिद्वार पहुंच गए। उस समय दिन निकला था। सूर्य पूर्व दिशा की ओर से उदय हो रहा था। सूर्य को चढ़ता देखकर वह सभी यात्री और साधू-संत सूर्य की तरफ मुंह करके पानी फैंकने लग गए। गुरु जी उनके इस भ्रम को दूर करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने सोचा कि इन लोगों को सन्मार्ग लगाने हेतु कोई नाटकीय
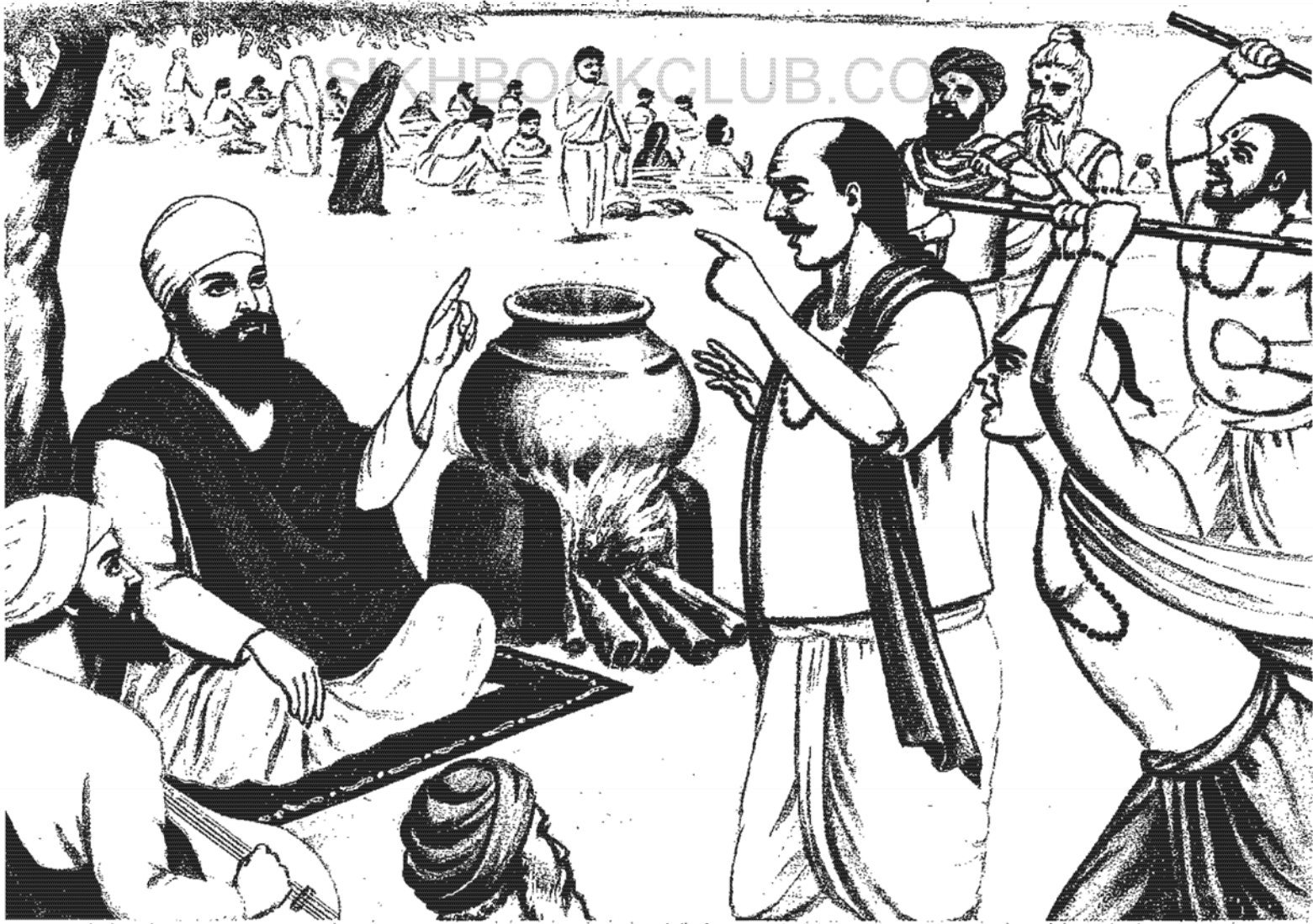
कार्य करना पड़ेगा। इसलिए वह भी अपने वस्त्र उतार कर हरिद्वार पानी में जा घुसे और पश्चिम दिशा की ओर मुंह करके शीघ्र-शीघ्र पानी फैंकने लग पड़े। सभी देखने वाले उनके इस कार्य पर बहुत चकित हुए। सभी कहने लगे, "आप कौन हैं? आपको इतना भी पता नहीं कि सूर्य तो सामने पूर्व दिशा की ओर से निकल रहा है, परन्तु आप पानी पश्चिम की ओर फैंक रहे हैं।" गुरु जी मुस्करा दिए और कहने लगे, "सज्जनो! मैं तो किसी विशेष मनोरथ से और किसी खास लाभ हेतु इधर पानी फैंक रहा हूँ, परन्तु मेहरबानी करके मुझे यह बताओ कि आप पूर्व की ओर पानी क्यों फैंक रहे हो?" वह गुरु जी को अनजान समझते थे। इसलिए सभी कहने लगे, "हम अपने पितरों को पानी पहुंचा रहे हैं।"

गुरु जी ने कहा, "मैं अपने खेतों को पानी दे रहा हूँ, उधर मेरे खेत सूख रहे हैं और इधर आप मुझे रोक रहे हो।" यह बात सुनकर लोगों में उत्सुकता और भी बढ़ी और वे हैरान होकर पूछने लगे कि आपके खेत यहां से कितने दूर हैं? गुरु जी ने कहा, "कोई अधिक दूर नहीं हैं, यह कोई दो अढ़ाई सौ कोस पर ही हैं, परन्तु मेरी विनती है कि मुझे तंग मत करो।" गुरु जी की यह बात सुनकर सारे हंस पड़े, वह कहने लगे, "हे भद्रपुरुष! तू इतना भोला है, जो पानी तू अंजुलि से फैंक रहा है, वह तो गंगा जल में ही पुनः गिर पड़ता है, यह तेरे खेतों तक कैसे जा सकता है?"

गुरु जी कहने लगे, "आप कोई विवेक की बात करो, आप कोई न्याय की बात करो, यदि आपका फैंका पानी दूसरी दुनिया में पहुंच सकता है तो मेरा फैंका इस दुनिया में दो अढ़ाई सौ कोस पर क्यों नहीं पहुंच सकता?"
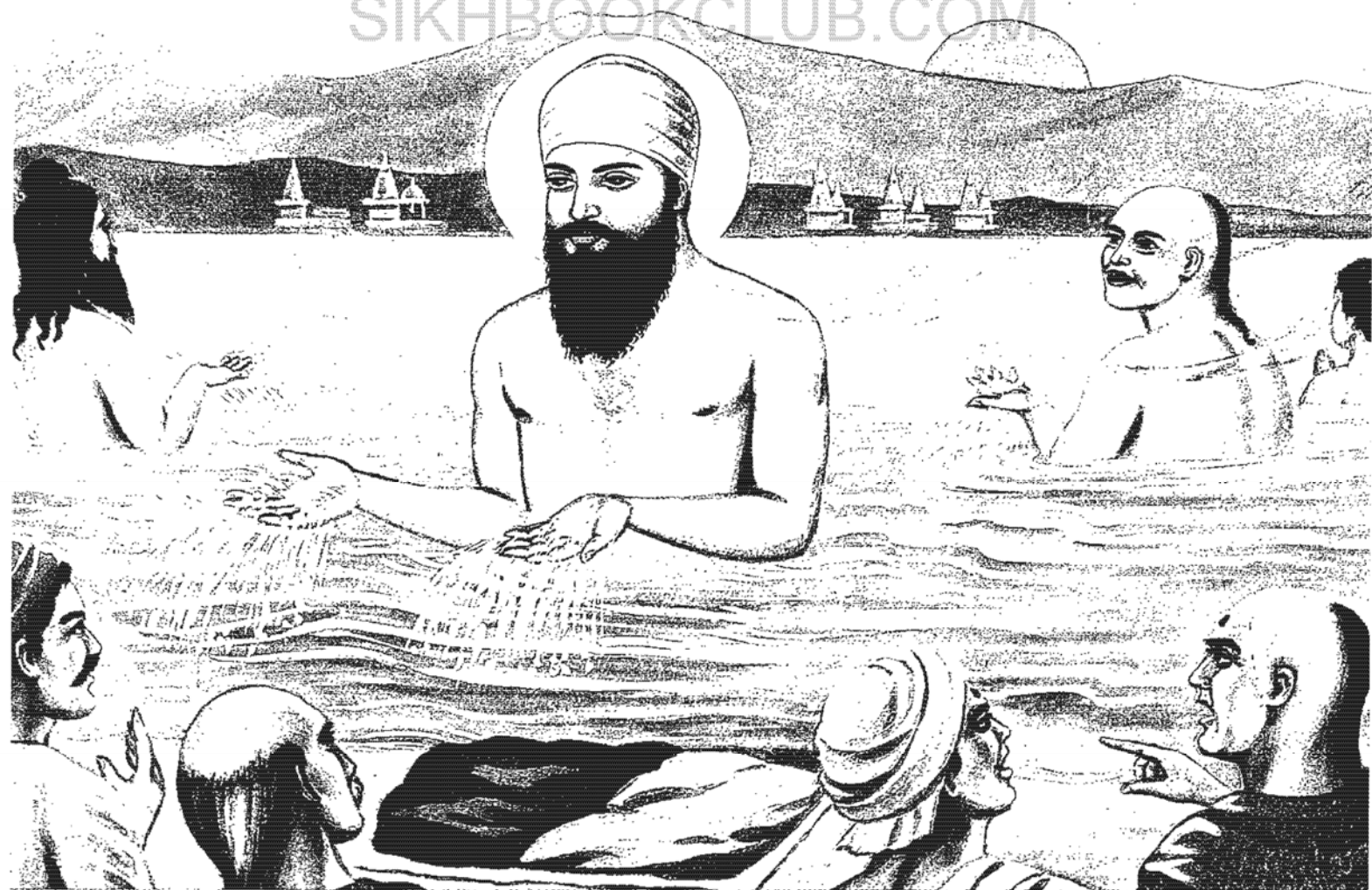
चलते-चलते गुरु जी पटना में पहुंच गए।

एक दिन मरदाना कहने लगा, "महाराज! मेरा मन चाहता है कि पटना शहर में जाऊं और यदि मेरे पास कुछ धन हो तो कोई खाने-पीने, पहनने वाली वस्तु खरीद कर लाऊं।" उसकी यह बात सुनकर गुरु जी ने कहा, "तुझे धन की क्या कमी है, यह तुझे मैं एक हीरा देता हूँ, यह बड़ा मूल्यवान है, तू इसका मूल्य डलवा कर इसे बेच ले और जो पैसे प्राप्त हों उससे जैसी इच्छा हो खरीद लेना।"

फिर मरदाना सालिस राय जौहरी की दुकान ढूंढ कर उसके पास चला गया और उसे हीरा पकड़ाया और कहने लगा कि मेरे मालिक ने इसे बेचने हेतु आपके पास भेजा है। सालिस राय ने हीरे को बड़े ध्यान से देखा, वह काफी देर तक उस हीरे की तरफ देखता रहा जैसे उस हीरे ने उसे मुग्ध कर दिया हो। फिर उसने हीरा मरदाने को पकड़ा कर एक सौ रुपया दिया और कहने लगा, "अपने मालिक से कहना कि इस हीरे का कोई मूल्य नहीं है, यह अमूल्य हीरा है, मैं इस हीरे को देखने का सौ रुपया देता हूँ, अपने मालिक को दे देना।" मरदाना भी चकित रह गया, उसने सारा वृत्तांत गुरु जी को आकर बताया। गुरु जी ने मरदाने से कहा, "यह सौ रुपया उस जौहरी को दे आ। यह हमारे किसी काम का नहीं, हम मुफ्त किसी का सौ रुपया नहीं ले सकते।" मरदाना जब रुपए वापिस करने सालिस राय के पास पधारा तो उसने मरदाने से उसके मालिक बारे पूछा। मरदाने ने कहा, "मेरा मालिक प्रभु रूप संत है, वह किसी से भिक्षा अथवा दान नहीं लेता, इसलिए यह रुपए उसके किसी काम के नहीं।"

जब सालिस राय ने यह सुना तो उसने अपने नौकर अधरके को मरदाने के पीछे भेजा और खुद
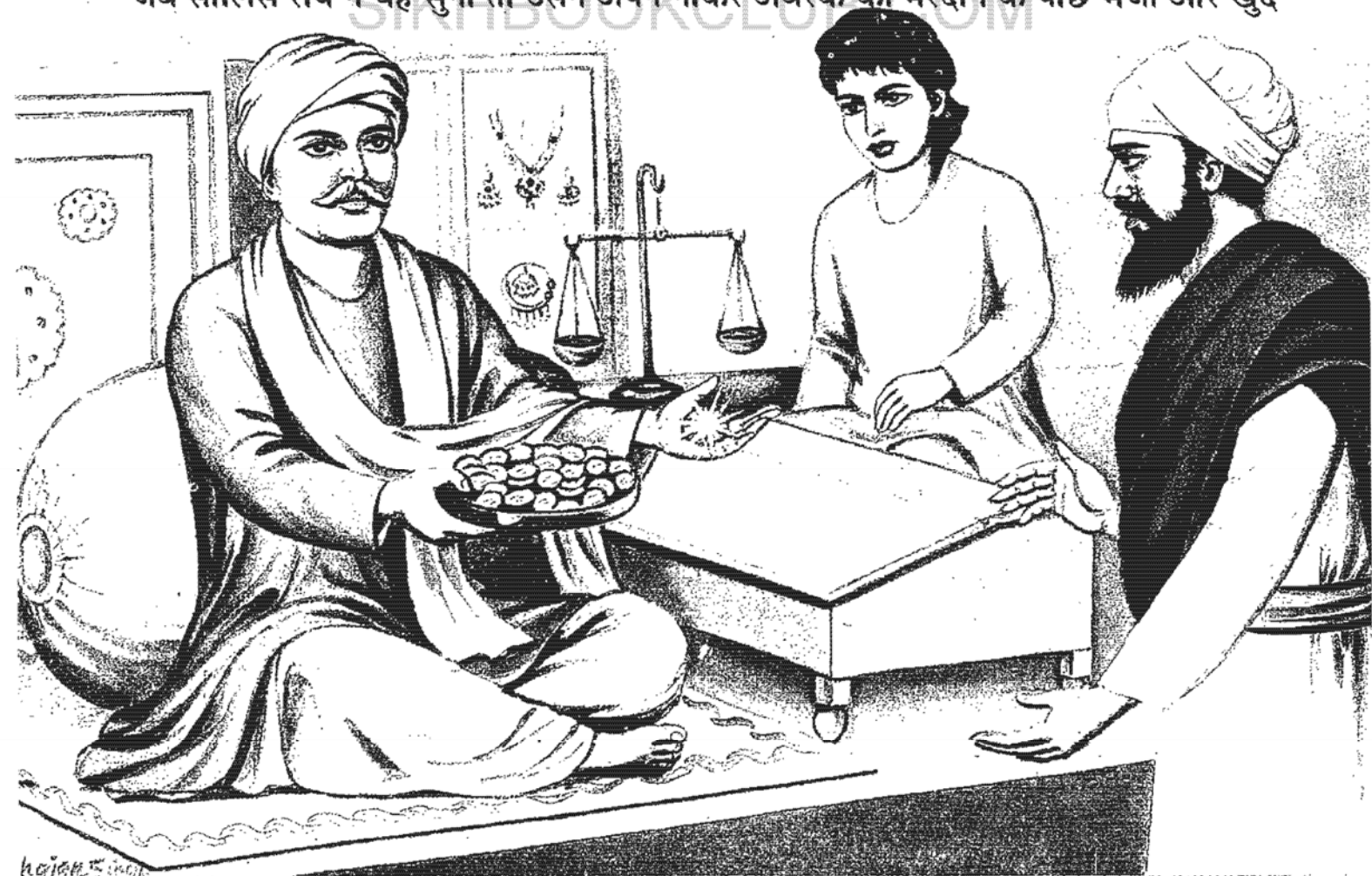
भी पीछे-पीछे चल पड़ा। अधरका जब गुरु के डेरे पहुंचा तो वह समाधि लगाए दिव्य कीर्त्तन में लीन थे। अधरका गुरु जी के चरणों पर माथा टेक कर वहां बैठ गया। कुछ समय पश्चात सालिस राय भी पहुंच गया और गुरु के दर्शन करके वह कृतार्थ हो गया।

बिहार-बंगाल में होते हुए गुरु जी कामरूप पहुंचे। शहर के बाहर ही गुरु जी ने अपना डेरा लगा लिया और भजन बंदगी में प्रवृत्त हो गए। एक दिन मरदाना गुरु जी से कहने लगा, "महाराज मैंने कई दिनों से कोई स्वादिष्ट भोजन नहीं खाया, यदि मुझे आज्ञा करो तो मैं इस शहर में जाकर कुछ खा-पी आऊं।" उन्होंने मरदाने को जाने की आज्ञा दे दी।

मरदाना जब कामरूप शहर में पहुंचा तो शहर का सौन्दर्य देख कर चकित हो गया। हर वस्तु ही मनमोहिनी थी। वह शहर के सौन्दर्य का आनंद लेता हुआ रानी नूरशाह के महलों के समक्ष पहुंच गया। जब नूरशाह की दासियों ने उसे देखा तो वह उसे बड़े प्रेमपूर्वक मिलीं और बड़े आदर-सत्कार से अपनी महारानी नूरशाह के पास ले गईं। नूरशाह तो पहले ही ऐसे शिकारों की तलाश में रहती थी। मरदाने के चेहरे के तेज को देख वह उस पर मुग्ध हो गई। उसने अपनी दासियों को उसे उत्तम से उत्तम भोजन प्रस्तुत करने को कहा। जब मरदाना भोजन खा चुका था तो उसे एक सुन्दर कक्ष में बिठा दिया गया और उसकी दासियां नृत्य करने लगीं। मरदाना जो कि लम्बी यात्रा का थका था, नूरशाह के जादू के प्रभाव के नीचे होश गंवा बैठा और बाहरी दुनिया बारे बिल्कुल भूल गया।
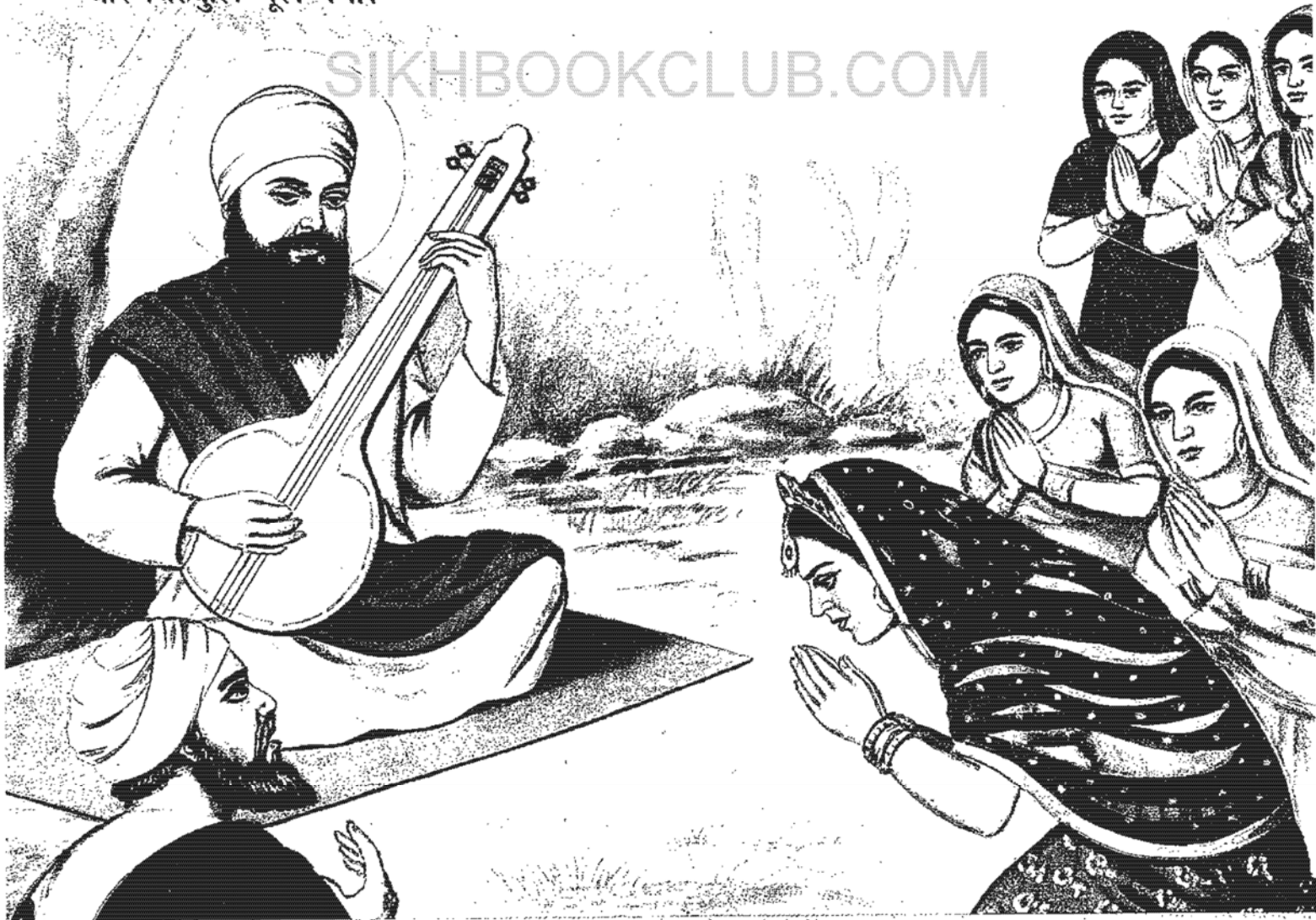
गुरु साहिब काफी देर प्रतीक्षा करते रहे, परन्तु जब काफी समय बीत गया तो वह सब कुछ समझ गए। उन्होंने एक अद्‌भुत लिबास पहना और नूरशाह के महल में प्रवेश कर गए। गुरु जी ने अपनी कंबली में से रबाब निकाला जो कि मरदाना उनके पास छोड़ आया था और रबाब की तारों को उन्होंने बजाया। फिर नेत्र बंद करके वह एक शब्द का गायन करने लगे। उनकी ध्वनि जब मरदाने ने सुनी तो वह भी होश में आ गया और गुरु जी के चरणों में आ पड़ा। दूसरी तरफ दासियां नृत्य-गायन भूल गईं और नूरशाह भी होश गंवा बैठी। दिव्य ज्योति को देखकर वह गुरु जी के चरणों में आ पड़ी और प्रार्थनाएं करने लगी। गुरु जी ने उसे दुष्कर्मों से वर्जित किया। वह भी गुरु जी की सिक्ख एवं प्रचारक बनी।

चलते-चलते गुरु जी बिहार, बंगाल और बर्मा में से होते हुए वहां पधारे, जहां हिन्दुओं का पवित्र धार्मिक स्थल 'जगन्नाथ पुरी' है। पुरी वैष्णव हिन्दुओं का बड़ा पावन स्थान है।

एक दिन जब वह श्री कृष्ण की मूर्ति की आरती उतार रहे थे तो गुरु जी बाहर अपने डेरे में बैठे परमात्मा की आरती उतारने लगे। सभी श्रद्धालु जो कृष्ण की मूर्ति की आरती में प्रवृत्त थे, गुरु जी की संगत में आ गए। गुरु जी ने उन लोगों को उपदेश दिया कि आप एक मन्दिर के घेरे में बैठे एक मूर्ति रूप जगन्नाथ की आरती उतार रहे हो, परन्तु मैं तो इस कायनात को बनाने वाले जगत के नाथ की आरती उतार रहा हूँ, इस आरती में किसी प्रकार की सामग्री की आवश्यकता नहीं। जो भी सामग्री आप इस आरती हेतु इस्तेमाल करते हो, वह तो इस कायनात में पहले ही मौजूद है। फिर गुरु जी ने उन्हें जगत के नाथ की वास्तविक आरती सुनाई। *"गगन मै थाल रवि चंद दीपक बने तारिका मंडल जनक मोती॥"*

सियालकोट शहर में एक बहुत बड़ा धनवान क्षत्रिय रहता था। कोई संतान न होने के कारण वह बड़ा चिन्तातुर था। लोगों के कहने पर वह पीर हमज़ा गौंस के पास गया और विनती की कि उसे पुत्र-रत्न की कृपा हो। उसने पीर से यह इकरार भी किया कि अपना पहला पुत्र पीर के डेरे पर अर्पण कर देगा।

कुछ समय उपरांत सेठ के घर तीन पुत्र पैदा हुए, वह अपने बड़े पुत्र को लेकर पीर हमजा गौंस के पास गया और कहने लगा, "पीर जी, मैं अपने इकरार मुताबिक अपना पहला पुत्र आपके डेरे पर अर्पण करने हेतु लाया हूँ। आज से यह आपका हुआ। अब आप जो भी इसका मूल्य करोगे, मैं देने को तैयार हूँ। इसके मूल्य की अदायगी करके मैं इसे अपने साथ वापिस ले जाऊंगा।"

परन्तु पीर उस सेठ की यह बात सुनकर बड़े क्रोध में आ गया और कड़क कर बोला, "मैंने इस पुत्र को बेचना नहीं है, मुझे धन-दौलत का अभाव नहीं, मुझे पुत्र चाहिए, इसलिए इसे यहां छोड़ जा और चलता बन।" परन्तु सेठ फिर विनती करने लगा और वह अपने पुत्र के लिए कोई भी रकम देने को तैयार था। परन्तु जब पीर ने उसकी एक न सुनी तो वह अपने पुत्र को अपने घर वापिस ले गया। पीर को सेठ की इस बेजुबानी पर गुस्सा आया। वह अपने मुरीदों को कहने लगा, "मैं चालीस दिनों का चालीसा करूंगा और जिस शहर में यह सेठ रहता है, उस शहर को जलाकर भस्म कर दूंगा।"

जब शहर में यह खबर पहुंची तो लोग बहुत घबरा गए और इकट्ठे होकर पीर के दर पर आए। परन्तु पीर के मुरीदों ने उन्हें आगे न जाने दिया।

जब गुरु नानक जी सियालकोट पहुंचे तो उन्हें पीर के इस घमण्ड एवं क्रोध का पता लगा तो वह पीर के गुंबद से कुछ दूर, गुंबद की ओर ध्यान धारण करके बैठ गए। जब दोपहर हुई तो गुंबद फट गया, पीर हमजा गौंस डर गया और तुरंत दरवाज़ा खोलकर बाहर आ गया। इस तरह पीर का चालीसा टूट गया। सब लोगों ने सुख की सांस ली और वह धन्यवाद के रूप में गुरु जी के चरणों में आ लगे।

सियालकोट से ही थोड़ी दूरी पर मियां मिट्ठे शाह एक प्रसिद्ध करामाती फकीर रहता था। गुरु जी की शोभा सुनकर एक दिन उसने भी मन बनाया कि गुरु जी को मिलने जाए और उन्हें मुसलमान बनाने बारे समझाए, परन्तु जब उसने जाकर गुरु जी के नूरानी चेहरे की ओर देखा तो वह सहम गया। फिर भी वह अपने हठ का पक्का था, वह गुरु जी से कहने लगा, "आप हिन्दू फकीर हो, आप किस देवते को मानते हो?" गुरु जी मुस्कुराते हुए मियां मिट्ठे शाह की ओर देखकर बोले, "मैं केवल एक ईश्वर को मानता हूँ जो सबका सृजनहार है।" मियां मिट्ठे शाह हैरान हुआ कि हिन्दू तो कई देवी-देवताओं को मानते हैं, परन्तु यह तो मुसलमानों की तरह एक ही परमात्मा को मानते हैं। अपनी शंका दूर करने हेतु उसने कहा, परन्तु एक परमात्मा को पाने हेतु रसूल की आवश्यकता है, आपका रसूल कौन है?" गुरु जी मिट्ठे शाह की रमज़ को समझ गए थे, उन्होंने उत्तर दिया, "परमात्मा के बंदे! परमात्मा को पाने हेतु किसी मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं होती। परमात्मा केवल उन्हें ही मिलता है, जो किसी मध्यस्थ के बिना परमात्मा का सिमरन

करते हैं। मुसलमानों एवं हिन्दुओं में फिर अन्तर क्या हुआ? मुसलमानों का एक रसूल है और हिन्दुओं के कई देवी-देवता रसूल का रूप हैं। इसलिए चाहे एक मध्यस्थ हो चाहे दस, कोई फर्क नहीं पड़ता। परमात्मा केवल उन्हें ही मिलता है जो मध्यस्थ का सहारा लिए बिना परमात्मा से अंतरंग होते हैं।"

गुरु जी का एक लाहौर निवासी सिक्ख भाई मनसुख, व्यापार के संबंध में संगलाद्वीप जाया करता था। वह सामान्य तौर पर राजा शिवनाभ से भी मिला करता था। राजा को उसने गुरु जी बारे बताया था। राजा भाई मनसुख की बातों से बहुत प्रभावित हुआ था और उसके मन में गुरु जी को मिलने हेतु बड़ी जिज्ञासा एवं अभिलाषा थी।

शिवनाभ की आकांक्षा को पूरी करने हेतु गुरु जी संगलाद्वीप पहुंच गए। गुरु जी और भाई मरदाने ने एक बाग में आवास किया। वहां वह नित्य कीर्त्तन करते और सत्संग में लोगों को उपदेश देते। जब राजे को गुरु जी बारे पता चला तो वह अपने पुत्र एवं पत्नी को साथ लेकर गुरु जी के पास पधारा।

गुरु जी के दर्शन करके वह कृतार्थ हो गया, किन्तु उसके मन में एक शंका उत्पन्न हुई कि यह महापुरुष कोई ब्राह्मण है, योगी है, हिन्दू है अथवा मुसलमान है। इसका कारण यह था कि गुरु जी ने अजीब किस्म का वेष धारण किया हुआ था, उनका उपदेश हिन्दुओं, मुसलमानों एवं योगियों से भिन्न था। उनकी वाणी सबसे अलग एवं निराली थी। वह भारत के उत्तर में से आए थे, परन्तु वह दक्षिण भाषा भी स्पष्ट बोल रहे थे। शिवनाभ के मन की दुविधा को समझ कर

गुरु जी ने फुरमाया, "राजा शिवनाभ! ब्राह्मण वह है जो ब्रह्म के ज्ञान का स्नान करता है और परमात्मा की महिमा-स्तुति के गीत गाता है। सारा ब्रह्माण्ड एक दुकान है जिसका एक ही शाह करतार स्वयं है और हम करतार के नाम के अभिलाषी वणजारे हैं। परमात्मा के प्रेमियों हेतु हिन्दू, मुसलमान एक हैं और सारा संसार ही उनका घर है।"

अपने सत्य धर्म का प्रचार करते और लोगों का उद्धार करते वह गोरखमत्ता पधारे। गुरु जी ने योगियों के आवास के बाहर दिव्य नाद छेड़ दिया। झंगर नाथ, भंगर नाथ नामक योगी गुरु जी के पास आकर इकट्ठे हुए और वह गुरु जी से कई प्रश्न करने लगे। गुरु जी ने उनके सब प्रश्नों के संतोषजनक उत्तर दिए। फिर गुरु जी ने उन्हें समझाया कि वास्तविक योगी वह है जो संसार की उलझनों में रहता हुआ भी निर्लिप्त परमात्मा में समाया रहे।

योगियों को शिक्षा देकर गुरु जी भाई मरदाने को लेकर हिमालय पर्वत की तरफ चल पड़े। मार्ग में एक रीठे के वृक्ष के नीचे विश्राम करने के लिए बैठ गए। वहां मरदाने ने विनती की, "महाराज! बड़ी भूख लगी है, मैं जंगल में से कोई फल ढूंढ कर खा आऊं।"

गुरु जी ने रीठे के वृक्ष की एक डाली की ओर संकेत करके कहा कि इस डाली के रीठे तोड़ कर खा ले। मरदाने ने जब वह रीठे खाकर देखे तो वह बहुत मीठे थे, वह धीरे-धीरे उस डाली के सारे रीठे खा गया, परन्तु जब वह दूसरी डाली के रीठे तोड़ कर खाने लगा तो वह अत्यंत
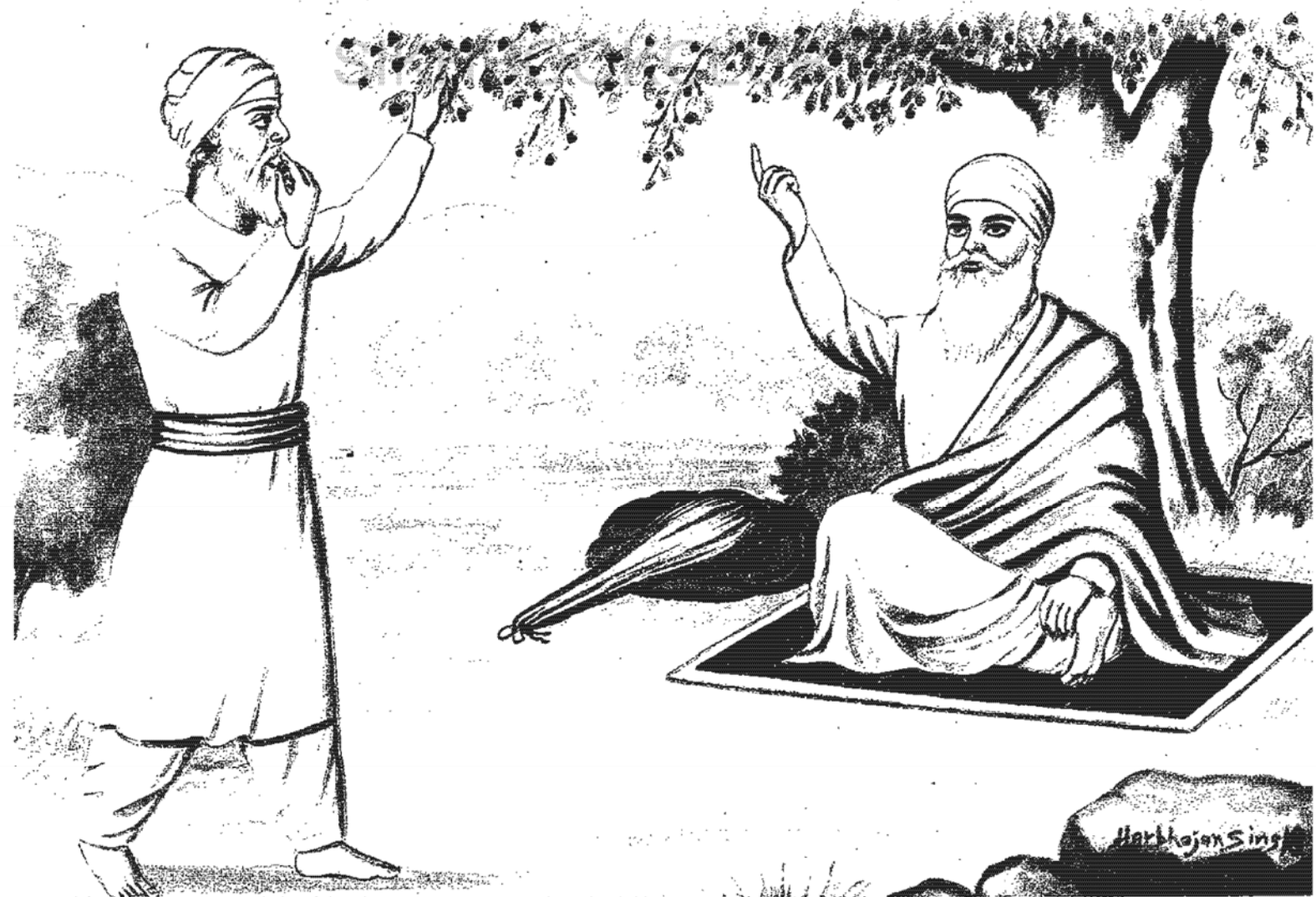
कड़वे थे। वह वृक्ष अभी तक कायम है, इसकी एक डाली के रीठे छुहारे की तरह मीठे हैं। यहां आजकल गुरुद्वारा रीठा साहिब विद्यमान है।

ऊंची पहाड़ियां चढ़ते गुरु जी सुमेर पर्वत पर पहुंच गए। वहां उन्हें बड़े प्रसिद्ध सिद्ध मिले। यह संसार को त्याग कर निक्कमों वाला जीवन व्यतीत कर रहे थे। करामातों का भय देकर पहाड़ी लोगों को उल्लू बनाकर बड़ी ऐश का जीवन बिता रहे थे।

एक साधारण व्यक्ति को सुमेर पर्वत पर पहुंचा देखकर वह बहुत चकित हुए और तुरंत गुरु जी के समीप आ गए। वह पूछने लगे, "न ही आप सिद्ध लगते हो और न ही कोई संन्यासी, फिर कौन-सी शक्ति आपको यहां लेकर आई है?" गुरु जी ने उत्तर दिया, "मैं सर्वशक्तिमान प्रभु के नाम का जाप करता हूँ, उसकी कृपा से ही मैं यहां पहुंच गया हूँ।"

फिर सिद्धों ने पूछा, "आपका नाम क्या है और आप किस मत से संबंधित हो?"

गुरु जी ने फुरमाया, "नाम मेरा नानक निरंकारी है और मत मेरा परमात्मा और उसकी रची सृष्टि से प्रेम करना है।"

फिर सिद्ध कहने लगे, "आप मृत्युलोक में से आए हो, वहां का क्या हाल है?"

गुरु जी मुस्कुरा कर बोले, "आप तो डरते हुए मृत्युलोक को छोड़कर यहां छिप कर बैठे हो, अब आपको मृत्युलोक से क्या मतलब? यदि आपके जैसे सिद्धियों के मालिक ही पहाड़ों पर चढ़ कर छिप जाएं और गरीब पहाड़ियों को लूट-लूट खाते जाएं तो मृत्युलोक की कौन खबर लेगा?

आज मृत्युलोक में अन्धकार मचा है, हर तरफ झूठ का प्रसार है, सत्य एवं धर्म आपकी तरह छिप कर बैठ गए हैं। राजे प्रजा की रक्षा करने की बजाए, उलटा उन पर अत्याचार कर रहे हैं, प्रजा चिल्ला रही है, परन्तु उनका कोई नेतृत्व नहीं कर रहा। आप बेकार इन पर्वतों पर चढ़े बैठे हो, क्यों नहीं मृत्युलोक में जाकर लोगों के दुखों के भागीदार बनते?"

गुरु जी और मरदाने ने हाज़ियों की तरह नीले वस्त्र पहन लिए और सिंध प्रान्त की तरफ चल पड़े। सिंध पहुंच कर वह एक हाजियों के काफिले के साथ शामिल हो गए और मक्का की ओर चल पड़े। मक्का पहुंच कर उन्होंने शेष हाजियों की तरह सारे कर्म किए। जब रात हुई तो वह परिक्रमा में काबे की ओर पैर फैला कर सो गए। मुसलमान काबे को प्रभु का घर मानते हैं और काबे की ओर पैर फैलाना वह बहुत बुरा समझते हैं। जब हाजियों ने गुरु जी को ऐसी बेअदबी करते देखा तो वे भागते हुए गुरु जी की तरफ आए। एक हाजी जिसका नाम जीवन था, गुरु जी को ठोकर मार कर कहने लगा, "उठ ओए तू कौन हैं, जो प्रभु के घर की ओर पैर फैला कर सोया हुआ है?"

गुरु जी बड़ी नम्रता से आँखें खोलकर बोले, "प्रभु के बंदे! क्रोध मत कर, मैं बहुत थका हुआ हूं, इसलिए ख्याल नहीं रहा, मुझसे अब उठा भी नहीं जाता। इसलिए आप मेरे पैर घसीट कर उस तरफ कर दो जिधर प्रभु का घर नहीं है।" जीवन ने क्रोध में आकर गुरु जी की टांगें दूसरी तरफ
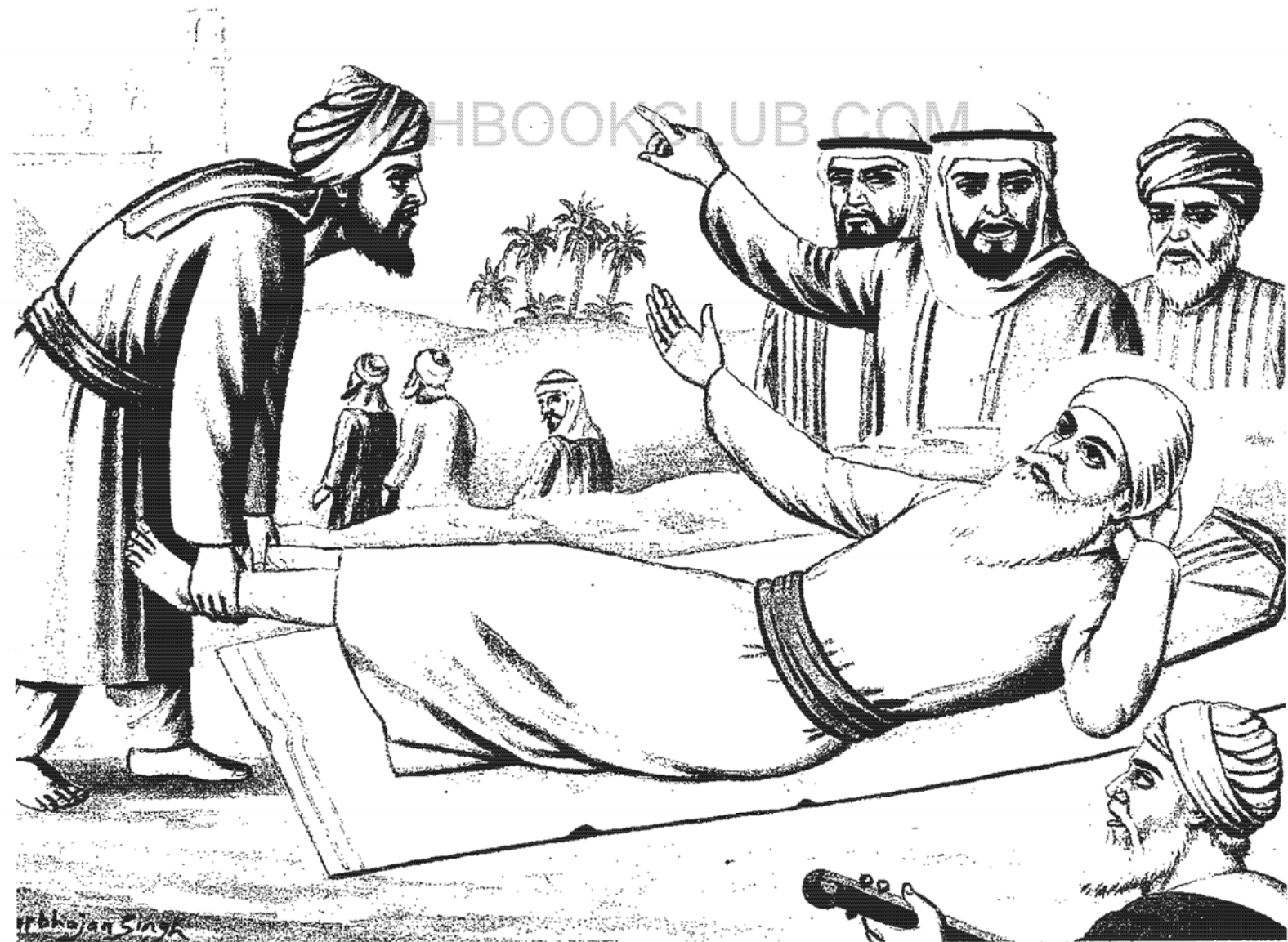
कर दीं, परन्तु वह देखकर हैरान हुआ कि काबा भी उस तरफ घूम गया जिधर गुरु जी की टांगें थीं। फिर उसने टांगें अन्य दिशा की तरफ घुमाईं परन्तु काबा उधर को घूम गया। जीवन और अन्य हाजी बहुत हैरान हुए कि वह क्या उपाय करें कि गुरु जी की टांगें काबे से विपरीत दिशा में करें।

जब वह इस कार्य में असमर्थ रहे तो वह गुरु के पास आकर बैठ गए और प्रार्थना करने लगे, "अल्लाह के बंदे! हम तो हार चुके हैं, आप ही परमात्मा के घर की ओर से अपने पैरों को दूसरी तरफ कर लो।"

मक्के से होकर गुरु जी बगदाद पधारे और वहां उनका पीर दस्तगीर से मिलाप हुआ।

पीर ने पूछा, "आप कौन हैं और किस घराने के फकीर हो?"

गुरु जी ने उत्तर दिया, "मुझे नानक कहते हैं, मैं वाहिद अल्लाह का फकीर हूँ।"

पीर ने फिर कहा, "परन्तु आपका कोई घराना, सम्प्रदाय, मुल्क इत्यादि तो होगा ही?"

गुरु जी ने मुस्करा कर पीर की ओर देखा और उसकी आँखों में आँखें डाल कर कहने लगे, "क्या अल्लाह का कोई धर्म, सम्प्रदाय अथवा मुल्क है? इस तरह अल्लाह के फकीरों का भी कोई घराना अथवा मुल्क नहीं होता। अल्लाह पाक किसी विशेष एक स्थान पर भी नहीं रहता हुआ अनंत आकाशों पातालों में रहती सृष्टि का भरपूर ख्याल रखता है। उसके निजाम में कोई त्रुटि नहीं। यह मनुष्य एवं इसके रहिबर ही यहां आकर भेदभाव उत्पन्न करते हैं।"

पीर गुरु जी की बातों से प्रभावित तो हुआ परन्तु लाखों आकाशों एवं लाखों पातालों की बात उसकी समझ में न आई। वह कहने लगा, "जहाँ तक हमारा ज्ञान है हमने तो सात आकाश एवं सात पाताल सुने हैं और पवित्र किताब में पढ़े भी हैं, किन्तु लाखों आकाशों व लाखों पातालों की

बात तो हमने कहीं पढ़ी-सुनी नहीं, कृपा करके हमें इस बारे समझाओ।"

पीर का लड़का भी करीब ही बैठा था, गुरु जी ने उसके माथे पर हाथ रखा और उसे आँखें बंद करने का आदेश किया। पीर के पुत्र ने क्षण में ही लाखों आकाश एवं पाताल देख लिए। पीर के पुत्र ने जब इस यथार्थ बारे अन्यों को बताया तो वह सब गुरु जी के चरणों पर नतमस्तक हो गए।

लोगों को नाम दान के भण्डार प्रदान करते हुए गुरु जी उस स्थान पर पहुंचे जिस नगर को हसन अब्दाल कहा जाता था। गुरु जी एक पहाड़ी की ओट में बैठ गए। मरदाने को बहुत प्यास लगी थी। गुरु जी ने उसे समझाया कि ऊपर पहाड़ पर एक चश्मा है, जिसमें काफी पानी है, परन्तु उस पानी का मालिक वली कंधारी बना बैठा है। परन्तु वह एक फकीर है यदि आप उसे निवेदन करोगे तो वह अवश्य आपको पीने के लिए पानी दे देगा। मरदाना पहाड़ चढ़ता हुआ वली कंधारी के पास पहुंचा और पानी के लिए निवेदन किया। किन्तु वली कंधारी कड़क कर बोला, "जिस फकीर का तू चेला बना है क्या वह तुझे पानी भी नहीं पिला सकता?" मरदाना प्यास से व्याकुल फिर गुरु जी के पास पहुंच गया। गुरु नानक ने उसे फिर निवेदन करने हेतु भेजा परन्तु मरदाना दूसरी बार भी निराश लौट आया। फिर गुरु जी ने संगत में बैठे कुछ व्यक्तियों को आदेश किया कि वह एक खास पत्थर को उखाड़ें। जब उन लोगों ने उस पत्थर को उखाड़ा तो एक बड़ा स्त्रोत पानी का चलने लगा।

वली कंधारी का वह सरोवर बिल्कुल सूख गया। वह गुस्से से लाल पीला हो गया। अपनी
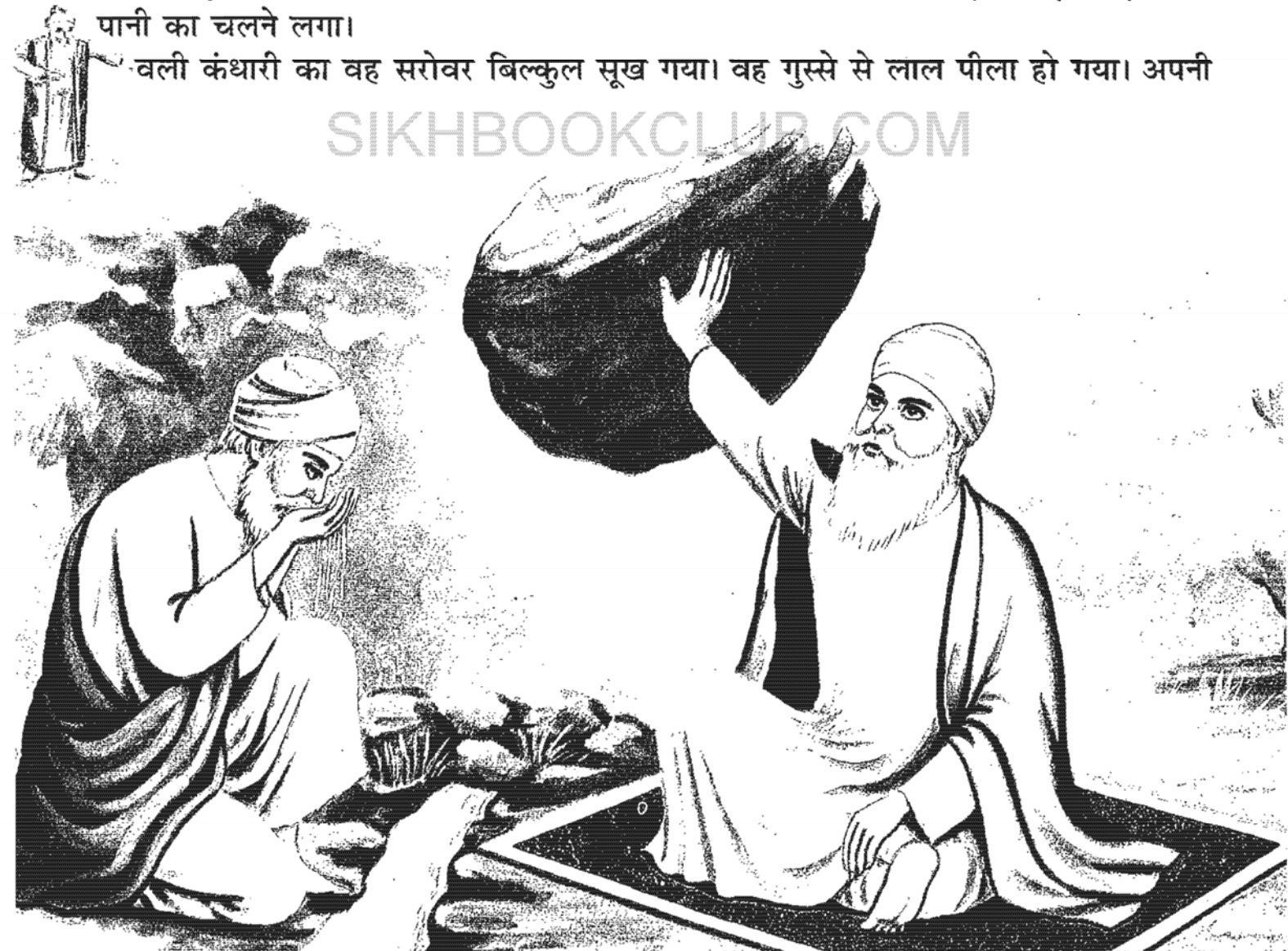
करामाती शक्ति से उसने एक बड़े पत्थर को गुरु जी की ओर धकेला ताकि वह पत्थर के नीचे कुचल कर मर जाएं। परन्तु जब वह पत्थर लुढ़कता हुआ गुरु जी की ओर आया तो गुरु जी ने अपना हाथ उस पत्थर के आगे कर दिया और पत्थर वहां ही रुक गया। गुरु जी का पंजा उस पत्थर में धंस गया। गुरु जी के पंजे का निशान अब भी उस पत्थर पर टिका हुआ है। जब गुरु जी के इस अद्‌भुत कौतुक का पता गांव वालों का लगा तो वह गुरु जी के चरणों में आ लगे।

वहां से चल कर गुरु जी सैदपुर पहुंच गए। गुरु जी कुछ दिन सैदपुर (ऐमनाबाद) ठहरे तो उस समय ही बाबर की सेना ने आक्रमण कर दिया। उन सब रजवाड़ों को लूट लिया और सारे शहर में आतंक मचा दिया। लूटा हुआ माल उन्होंने लोगों के सिर पर रख दिया और उन्हें अपने तंबुओं में ले जाने हेतु चल पड़े। गुरु जी, भाई मरदाना और भाई लालो भी पकड़े गए। उनके सिर पर भी सामान रखवाया और अपने साथ ले लिए। उन्होंने लोगों का सारा सामान एक स्थान पर रखवा कर, बंदी बना लिया। सबको एक कैदखाने में बंद करके उन्हें अनाज पीसने हेतु चक्कियां चलाने लगा दिया। गुरु जी और भाई मरदाने को भी चक्कियां दी गईं। गुरु जी बंदीखाने में भी प्रफुल्लित थे। वह नेत्र बंद करके एक नवीन आए दिव्य शब्द का गायन करने लगे। गुरु जी की मधुर सुरीली वाणी ने समस्त कैदियों को मुग्ध कर दिया और वह अपने सब दुःख भूल गए।
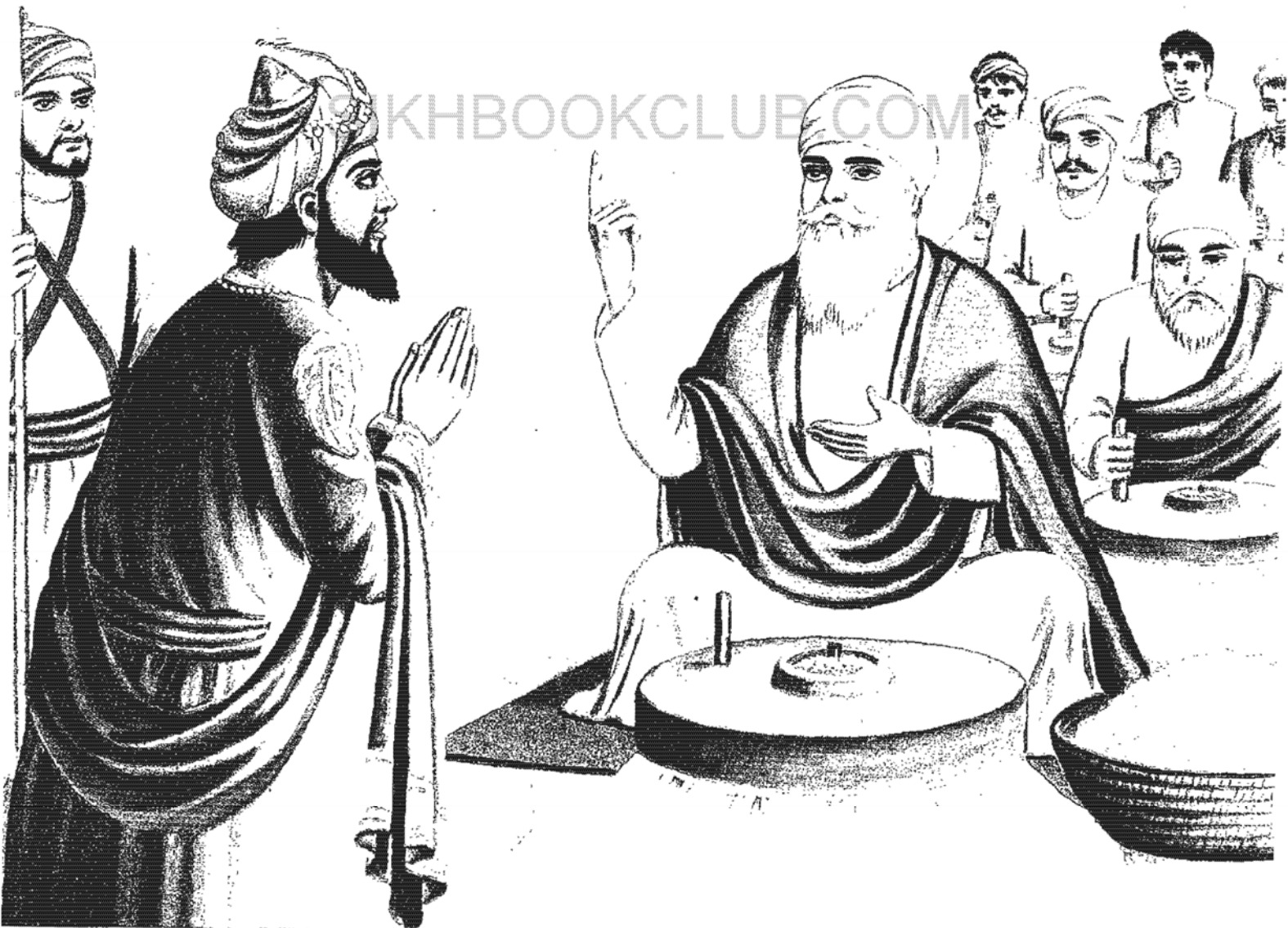
उनकी चक्कियां स्वयं ही चल रही थीं। कुछ सिपाही दौड़ कर गए और उन्होंने इस विचित्र घटना के बारे में बाबर को जाकर बताया। बाबर भी इस विस्मादमयी घटना को सुनकर बहुत प्रभावित हुआ और वह तुरंत बंदीखाने वाले खेमे में पहुंच गया।

बाबर ने अपने कृत्य पर अफसोस व्यक्त किया और गुरु जी से कहने लगा, "अब मुझे क्या करना चाहिए कि परमात्मा मुझे क्षमा कर दे?" गुरु जी ने उससे कहा कि वह सब कैदियों को छोड़ दे और उनका लूटा हुआ माल वापिस करे और आगे से किसी पर अत्याचार न करे। बाबर ने गुरु जी की आज्ञा अनुसार सब कैदी मुक्त कर दिए।

उन दिनों में अचल बटाले सिद्धों-योगियों का एक बड़ा मेला लगता था। गुरु जी ने सिद्धों के प्रभाव को काफी न्यून कर दिया था, किन्तु फिर भी वह अपनी शाख को बढ़ाने हेतु अचल बटाले शिवरात्रि के समय इकट्ठे होते थे। वह लोगों को कई प्रकार की करामातें दिखा कर लूटते थे।

इस मेले के बारे में सुनकर गुरु जी भी भाई मरदाने एवं कुछ अन्य साथियों को लेकर अचल बटाले पहुंचे। उन्होंने कई प्रकार की करामातें एवं चमत्कार दिखा कर गुरु जी को हराने का प्रयास किया, परन्तु गुरु जी पर उनकी करामातों का कोई असर न हुआ। वह सब कुछ शांत चित्त देखते रहे। जब योगी अपनी सब करामातें प्रस्तुत करके हार गए तो वह गुरु जी से कहने लगे, "हम तो आपको कई करामातें दिखा चुके हैं, आप भी हमें कोई करामात दिखाओ।"

गुरु जी ने कहा, "मेरे पास आपके जैसी छोटी-मोटी करामातें अथवा चमत्कार नहीं जिनका प्रभाव दो चार पल रहकर फिर खत्म हो जाता है। मेरे पास वह करामात है जो खत्म नहीं होती, अपितु हर समय मेरे पास रहती है, वह करामात है परमात्मा के नाम की। परमात्मा के नाम सिमरन से दुनिया की सब करामातें प्राप्त हो जाती हैं।
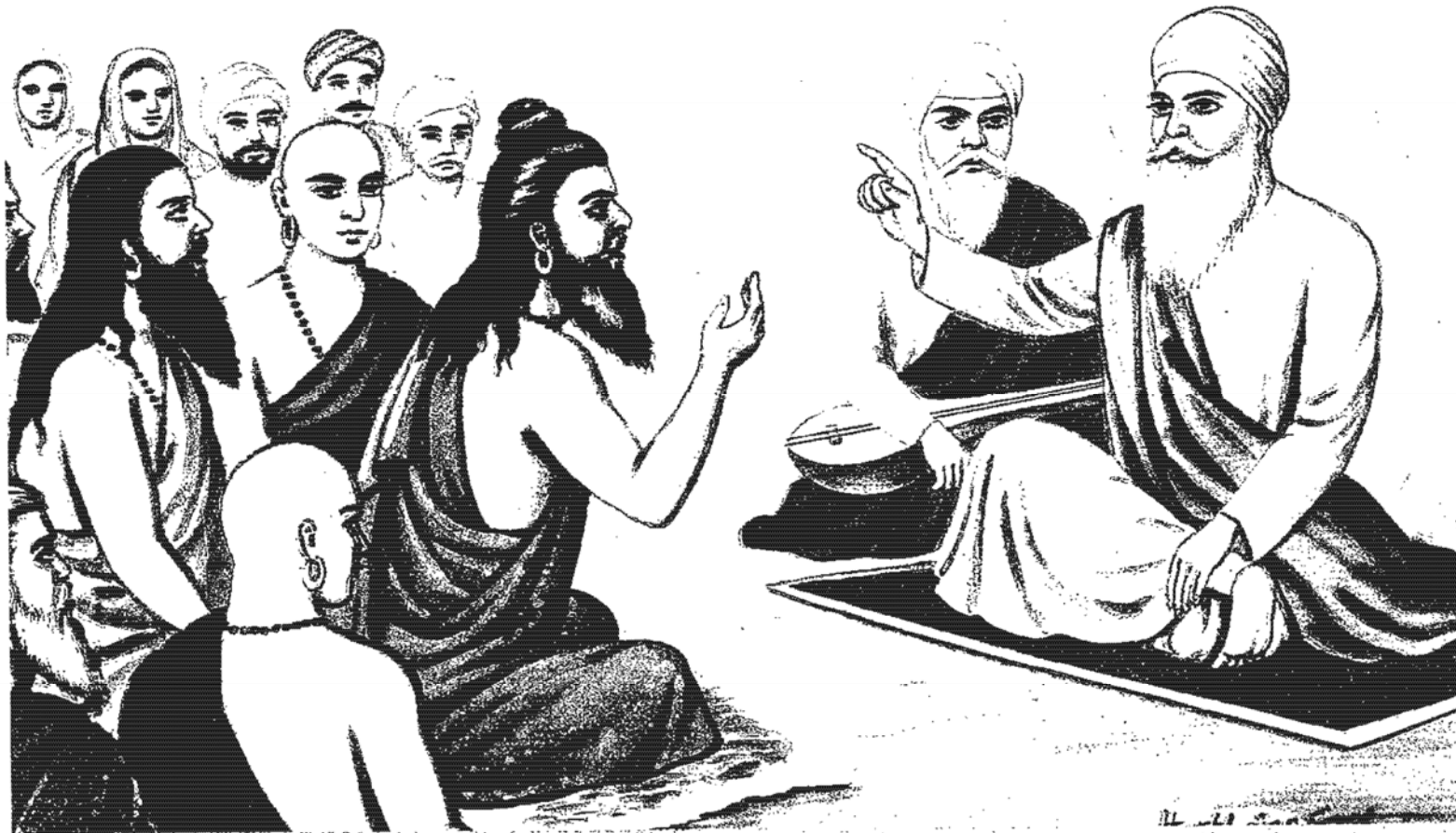
उसके पश्चात जब गुरु जी कुछ समय करतारपुर रहे तो उन्हें पता चला कि सूफी पीर फकीर मुलतान में एक बहुत बड़ा समारोह कर रहे हैं। गुरु जी ने भाई मरदाने को साथ लिया और मुलतान शहर के बाहर दरिया के तट पर आवास कर लिया। जब पीरों फकीरों के समूह को यह पता लगा तो वह बहुत घबराए। वह डरते थे कि यदि गुरु जी यहां ठहर गए तो भोले-भाले लोग उनके शिकंजे में से निकल जाएंगे और वह भूखे मरेंगे।

उन्होंने गुरु जी को परखने हेतु दूध का एक ऊपर तक भरा कटोरा कुछ सेवकों के हाथ भेजा। मरदाने ने कटोरा पकड़ना चाहा, किन्तु गुरु जी ने उसे रोक दिया और कटोरा अडोल अपने हाथ में पकड़ कर उस पर एक चमेली का फूल रख दिया और लाने वाले सेवकों से कहा कि इसे वापिस उस पीर के पास पहुंचा दो जिसने यह भेजा है। भाई मरदाना यह सब कुछ देखकर बड़ा हैरान हुआ और उसने गुरु जी से पूछा, ''सतिगुरु जी इसमें क्या रहस्य है? दूध का भरा कटोरा लेने की जगह आपने उस पर चमेली का फूल रखकर वापिस कर दिया है।'' भाई मरदाने की यह बात सुनकर गुरु जी ने फुरमाया, ''भाई मरदाने! इस में एक गहरा भेद है, पीरों ने दूध का कटोरा इसलिए भेजा था कि मुलतान शहर पहले ही पीरों-फकीरों से भरा हुआ है, यहां किसी अन्य पीर की गुंजायश नहीं, हमने कटोरे पर चमेली का फूल रखकर उन्हें यह जवाब भेजा है कि हम किसी को दुःख देने अथवा स्थान घेरने नहीं आए, हम तो परमात्मा के नाम की सुगन्धि बांटने आए हैं। हम पीरों पर चमेली के फूल की तरह रहेंगे, किसी के सिर का भार नहीं बनेंगे अर्थात् हमारा यहां रहना, खिलना एवं महकना चमेली की तरह होगा।''

तदुपरांत गुरु जी ने करतारपुर को सिक्खी प्रचार का केन्द्र बना लिया। करतारपुर में वह स्वयं कृषि करते थे, जिसका भाव वह अपने श्रद्धालुओं को बताना चाहते थे कि यौगियों, पीरों की तरह मांग कर नहीं खाना चाहिए अपितु अपने हाथों से परिश्रम करना चाहिए। प्रातः काल उठकर जो उस प्रभु का सिमरन करते थे, उसका अभिप्राय था कि गृहस्थ में रहते हुए भी इन्सान प्रभु की भक्ति कर सकता है। उसे जंगलों में जाने की आवश्यकता नहीं, पहाड़ों पर चढ़ने का कोई लाभ नहीं। जो मनुष्य इस जीवन संग्राम को छोड़कर जाता है, वह कायर है। हमें अपने सृजनहार से सदैव ही एकरूप होना चाहिए और उसके जलवे को देखना चाहिए। वह अपने सिक्खों को यह शिक्षा देते थे कि हमारा एक ही पिता प्रभु है और सारा संसार हमारा घर है। कोई बड़ा-छोटा नहीं, कोई ऊंच-नीच नहीं, यह जात-पात का विभाजन केवल स्वार्थी लोगों द्वारा किया गया है। ब्राह्मण लोग दूसरे व्यक्ति के साथ स्पर्श होने पर ही स्वयं को अपवित्र समझते थे और निम्न जाति के लोगों के सम्मुख बैठ कर भी भोजन नहीं खा सकते थे। इस अपवित्रता की प्रथा को तोड़ने हेतु गुरु जी ने सांझे लंगर की परम्परा आरम्भ की। उस लंगर में सब बराबर समझे जाते थे और सबको एक समान भोजन खिलाया जाता था। वहां कोई हिन्दू पानी अथवा मुस्लिम पानी नहीं था, अपितु सबके लिए एक ही पानी था। गुरु नानक देव जी ने भाई लहने जी को अपना उत्तराधिकारी नियत करके गद्दी सौंप दी और उन्हें खडूर साहिब जाने हेतु आदेश कर दिया।

श्री गुरु अंगद देव जी

गुरु अंगद देव जी का उनके माता-पिता द्वारा रखा गया पहला नाम भाई लहना जी था। आप जी का जन्म 31 मार्च, 1504 ई. को गांव मत्ते की सराय तहसील एवं ज़िला मुक्तसर में हुआ। आप के पिता जी भाई फेरूमल जी कुशल साहूकार थे और फिरोज़पुर के हाकिम की मुनीमी का कार्य करते थे।

जब भाई लहना जी ने अवतार धारण किया तो सारे क्षेत्र में हर्षोल्लास मनाया गया। भाई फेरूमल जी धार्मिक विचारों के व्यक्ति थे और देवी दुर्गा के उपासक थे। उनके घर में देवी दुर्गा की स्तुति में भजन गाए जाते थे और वह हर वर्ष अपने सत्संगियों का दल लेकर ज्वालामुखी जाते थे। सारे सत्संगी सुन्दर बालक को देख कर देवी माता की अपार कृपा बता रहे थे। पंडित यह भी भविष्यवाणी कर रहे थे कि वह बड़े होकर शिरोमणि भक्त बनेंगे।

जब भाई लहना जी बड़े हुए तो उनकी विद्या का विशेष प्रबंध किया गया। भाई फेरूमल जी जैसे कि स्वयं अच्छे पढ़े-लिखे थे इसलिए अपने पुत्र को हर प्रकार की विद्या पढ़ाई।

जब भाई लहना जी जवान हो गए तो आप जी का विवाह गांव खडूर ज़िला अमृतसर में देवी
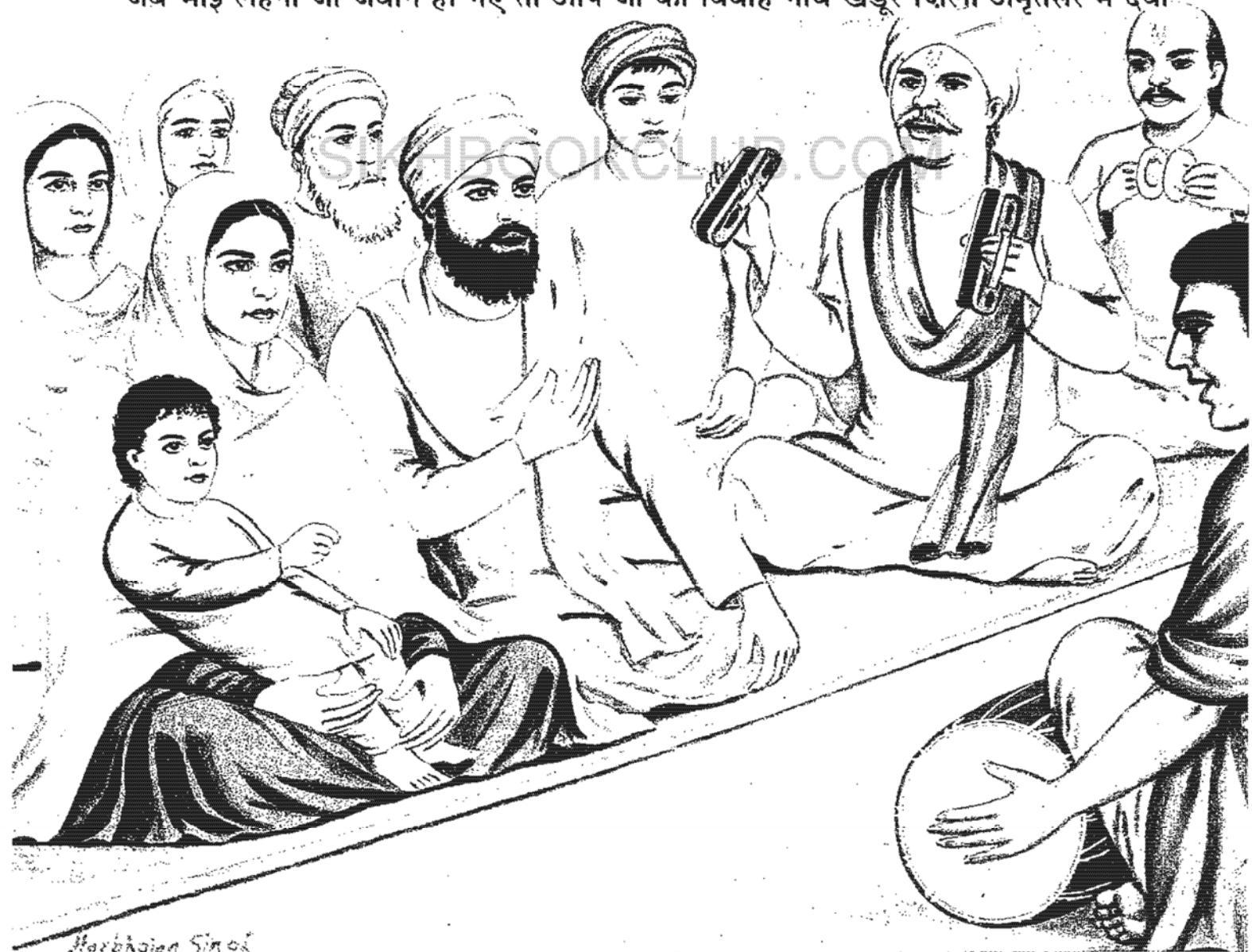
चन्द की सुपुत्री खीवी जी से कर दिया।

आप जी नित्य प्रात:काल गांव के तालाब में स्नान करने जाया करते थे। एक दिन जब वह स्नान करने गए तो उन्होंने एक व्यक्ति को स्नान करते देखा। वह व्यक्ति ऊंची-ऊंची बड़े सुरीले स्वर में वाणी पढ़ रहा था। भाई लहना जी इतनी मधुर वाणी सुनकर मुग्ध हो गए। वह तुरंत उस व्यक्ति के पास पहुंचे और निकट जा कर उन्होंने देखा कि भाई जोध आसा दी वार की इक्कीसवीं पउड़ी का पाठ कर रहा था।

भाई लहना जी ने ऐसी वाणी पहले कहीं नहीं सुनी थी। वह तो केवल देवी की भेंटे ही सुनते थे अथवा स्वयं गाते थे। आपकी आवाज़ बड़ी सुरीली थी और उनसे भजन सुनकर देवी माता के श्रद्धालु कृतार्थ हो जाते थे। किन्तु भाई जोध जी जो गुरु नानक साहिब की वाणी पढ़ते थे; उसके सामने देवी माता के भजन उन्हें फीके लगे। भाई जोध के पास जाकर वह बड़ी नम्रता से बोले, "भाई जोध जी यह भजन आपने कहां से याद किए हैं?" भाई जोध जी बोले, "महापुरुषो! यह भजन नहीं हैं, यह बाबे नानक निरंकारी की ईश्वरीय वाणी है, यह उन्हें धुर से उतरी है। जो इस वाणी को पढ़ता है, वह प्रत्यक्ष प्रभु के दर्शन करता है और इस भवसागर को पार कर जाता है।"

भाई जोध की यह बातें सुनकर भाई लहना जी में गुरु दर्शनों की तीव्र लालसा उत्पन्न हुई। उन्होंने पक्का मन बना लिया कि इस बार जब वह देवी दर्शनों को जाएंगे तो करतारपुर में से होकर जाएंगे।

भाई लहना जी को बढ़िया किस्म के घोड़े रखने का बहुत शौक था। उनका व्यापार दूर-दूर गांवों में चलता था, इसलिए उग्राही हेतु एक अच्छे घोड़े का पास होना अति आवश्यक था।
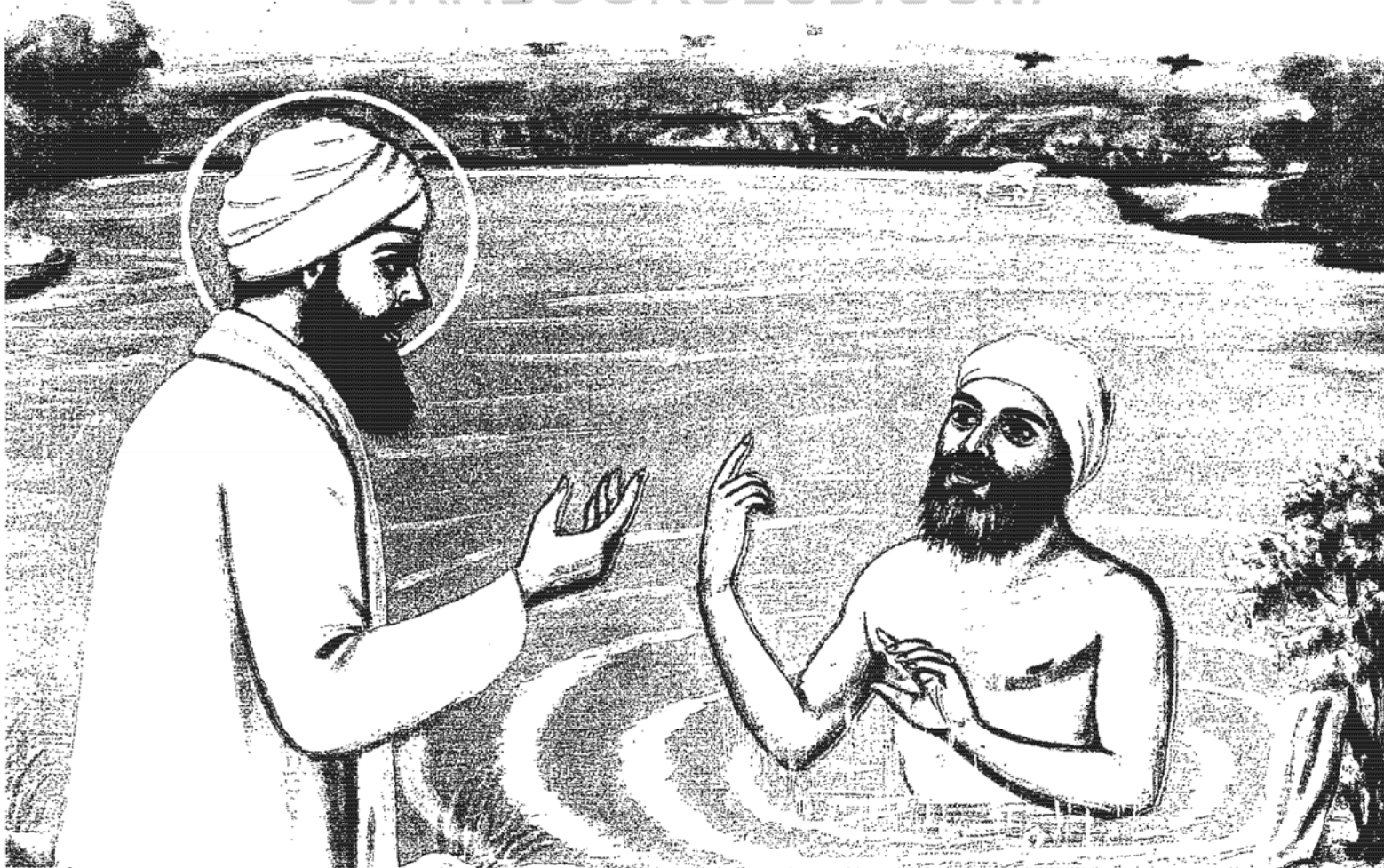
इस वर्ष भी जब वह अपने साथियों को लेकर ज्वालामुखी चले तो उन्होंने अपना सबसे बढ़िया घोड़ा सजाया।

करतारपुर के निकट पहुंच कर उन्होंने अपने साथियों को समीपवर्ती गांव की धर्मशाला में ठहरने हेतु कह दिया और स्वयं घोड़े को एड़ी लगाकर करतारपुर की ओर रवाना हो गए। दरिया पार करते ही उन्हें नया बसा नगर दिखाई दिया। उन्होंने सीधा उस तरफ अपने घोड़े को मोड़ लिया। जब वह गांव के बाहर पहुंचे तो एक ऊंचे-लम्बे एवं सुडौल शरीर वाले वृद्ध को उन्होंने वहां खड़े देखा। उन्होंने उस वृद्ध से गुरु नानक के दरबार का मार्ग पूछा। वृद्ध ने उन्हें कहा कि उनके पीछे-पीछे आए, वह उनको गुरु के दरबार ले जाएंगे। गुरु नानक देव जी के दरबार के समीप पहुंच कर, उस वृद्ध ने भाई लहना जी को एक खूंटे की ओर संकेत करके कहा, "घोड़ा इस खूंटे के साथ बांध दो, सामने गुरु का दरबार है, गुरु जी आपको वहां ही मिलेंगे।" भाई लहना जब दरबार में उपस्थित हुआ तो उसे पता लगा कि उसे मार्ग दिखाने वाले गुरु नानक देव जी स्वयं ही थे।

गुरु नानक देव जी के दर्शन करके भाई लहना जी कृतार्थ हो गए।

भाई लहना जी फिर स्थाई तौर पर करतारपुर रहने लग गए। वह तन-मन से सेवा में जुट गए। लगभग सात वर्ष भाव 1532 से 1539 ई. तक सेवा का कार्य निभाते रहे। गुरु नानक देव जी द्वारा उन्हें जो भी आदेश होता वह सत्यवचन कह कर उसी समय ही कर देते। एक दिन गंदे कीचड़ में एक बर्तन गिर गया, गुरु जी ने अपने पुत्रों एवं अन्य सिक्खों को निकालने हेतु कहा, परन्तु गंदे पानी में छलांग मारने की किसी की हिम्मत न पड़ी। जब उन्होंने भाई लहना जी को संकेत किया

तो वह तुरंत कूद कर कटोरा निकाल लाए और साफ करके गुरु जी को दे दिया।

भाई लहना जी के आचरण एवं गुरमुखता को देखकर गुरु नानक देव जी समझ गए कि वह अब उनका 'अंग' बन चुके हैं। उन्होंने भाई लहना जी का नाम 'अंगद' रख दिया और अपनी गद्दी उन्हें दे दी।

गुरुयाई देकर गुरु नानक देव जी ने गुरु अंगद देव जी को खडूर जाने हेतु कहा। गुरु अंगद देव जी करतारपुर से चलकर खडूर में माई भिराई के घर जा विराजे। सारी संगत उन्हें ढूंढती रही परन्तु वह कहीं भी न मिले।

आखिर सारी संगत इकट्ठी होकर बाबा बुड्ढा जी के पास गई और उन्हें विनती की कि इस कार्य में वह ही सहायता कर सकते हैं।

जब माई भिराई को यह पता लगा कि बाबा बुड्ढा जी कुछ सिक्खों को साथ लेकर स्वयं उसके घर की तरफ आ रहे हैं तो वह उन्हें आगे ही जा मिली। माई भिराई के चेहरे की तरफ देखकर बाबा बुड्ढा जी जान गए कि सतिगुरु यहां ही हैं। अपने साथ रबाबी बलवंड को भी लाए थे। उन्होंने उसे रबाब बजाने और शब्द का गायन करने हेतु कहा। रबाबी ने शब्द गाया तो गुरु जी बाहर आ गए। वह सब को देख कर मुस्कुराए और बोले, "आप ने वास्तविक बात को ढूंढ लिया है, यदि गुरु को पाना हो, तो कीर्त्तन करो।"

गुरु नानक देव जी के सिक्ख जो करतारपुर जाया करते थे, अब खडूर साहिब आने लगे। कुछ समय में ही खडूर साहिब गुरु की नगरी करतारपुर में ही बदल गया।

सुनसान स्थान पर दिव्य कीर्त्तन का प्रवाह चल पड़ा। दीवान लगते और गुरु जी ईश्वरीय वाणी का प्रचार करते। कहीं स्कूल बन रहे थे, कहीं कुओं का निर्माण किया जा रहा था, परन्तु इन में जो सबसे बड़े सेवा के पुंज थे, वह थे माता खीवी जी। गुरु जी ने आप जी को लंगर की सेवा प्रदान की थी।

माता जी की यह दिनचर्या थी कि वह पहर रात रहते ही उठते, फिर पाठ करके लंगर की सेवा में लग जाते थे। भाई सत्ता व बलवंड अपनी वार में लिखते हैं कि माता खीवी जी नित्य घी वाली खीर तैयार करते थे और अपने हाथों से संगत में बांटते थे।

बाबर की मृत्यु के पश्चात उसका बड़ा पुत्र नसीरुद्दीन हुमायूं 26 दिसंबर, 1530 ई. को आगरे के सिंहासन पर विराजमान हुआ। उसने अभी दस वर्ष राज भी नहीं किया था कि शेरशाह सूरी

से उसकी लड़ाई हो गई। इस लड़ाई में 17 मई, 1540 ई. को हुमायूं हार गया और शेरशाह सूरी ने आगरे पर कब्जा कर लिया। अपने प्राण बचाता हुमायूं अपने कुछ साथियों सहित पंजाब की तरफ भाग उठा।

हुमायूं जब खडूर साहिब पहुंचा तो उसने सोचा कि गुरु नानक की गुरु-गद्दी पर बैठने वाला फकीर किसी छोटे-मोटे मकान अथवा झोंपड़ी में रहता होगा। परन्तु जब खडूर साहिब आकर उन्होंने गुरु नानक के वारिस बारे पूछा तो गांव के लोगों ने बताया कि उनका दरबार ऊंचे स्थान पर स्थित है। हुमायूं घोड़ा भगाता हुआ अपने अहलकारों सहित दरबार के निकट पहुंचा। फिर वह घोड़ों से उतर कर दरबार में गुरु जी के सम्मुख हुए। गुरु जी उस समय कुछ सिक्खों से विचार-विमर्श कर रहे थे। जब काफी समय उन्होंने हुमायूं की ओर न देखा तो हुमायूं क्रोध में आ कर म्यान में से तलवार निकालने लगा। गुरु जी ने जब नज़र भर कर उसकी तरफ देखा तो हाथ

तलवार की मूठ पर ही रह गया। गुरु जी ने फुरमाया, "हुमायूं इस तलवार को शेरशाह सूरी के सामने निकालना था, फकीरों पर तलवारें चलाना कोई वीरता नहीं है।" हुमायूं लज्जित हो गया और वहां से ही वापिस लौट गया।

गुरु अंगद देव जी ने इस गुरमुखी लिपि को और संवारा तथा इसकी पढ़ाई हेतु एक स्कूल खडूर साहिब में खोला। उस स्कूल में केवल बच्चे ही नहीं, अपितु बाहर से आए सिक्ख भी पढ़ते थे।

गुरु नानक देव जी की जीवनी भी सिक्खों की एक बड़ी धरोहर थी और उन्होंने इन अमूल्य जीवन साखियों से बहुत शिक्षा प्राप्त करनी थी। गुरु अंगद देव जी सात वर्ष करतारपुर रह कर गुरु नानक देव जी की बहुत जीवन साखियां सुन चुके थे और इन शिक्षादायक साखियों को वह दरबार में प्रमाण के तौर पर सुनाया भी करते थे। भाई पैड़ा मोखा गुरमुखी लिपि में अत्यंत निपुण थे। गुरु जी ने उसे बुलवा लिया।
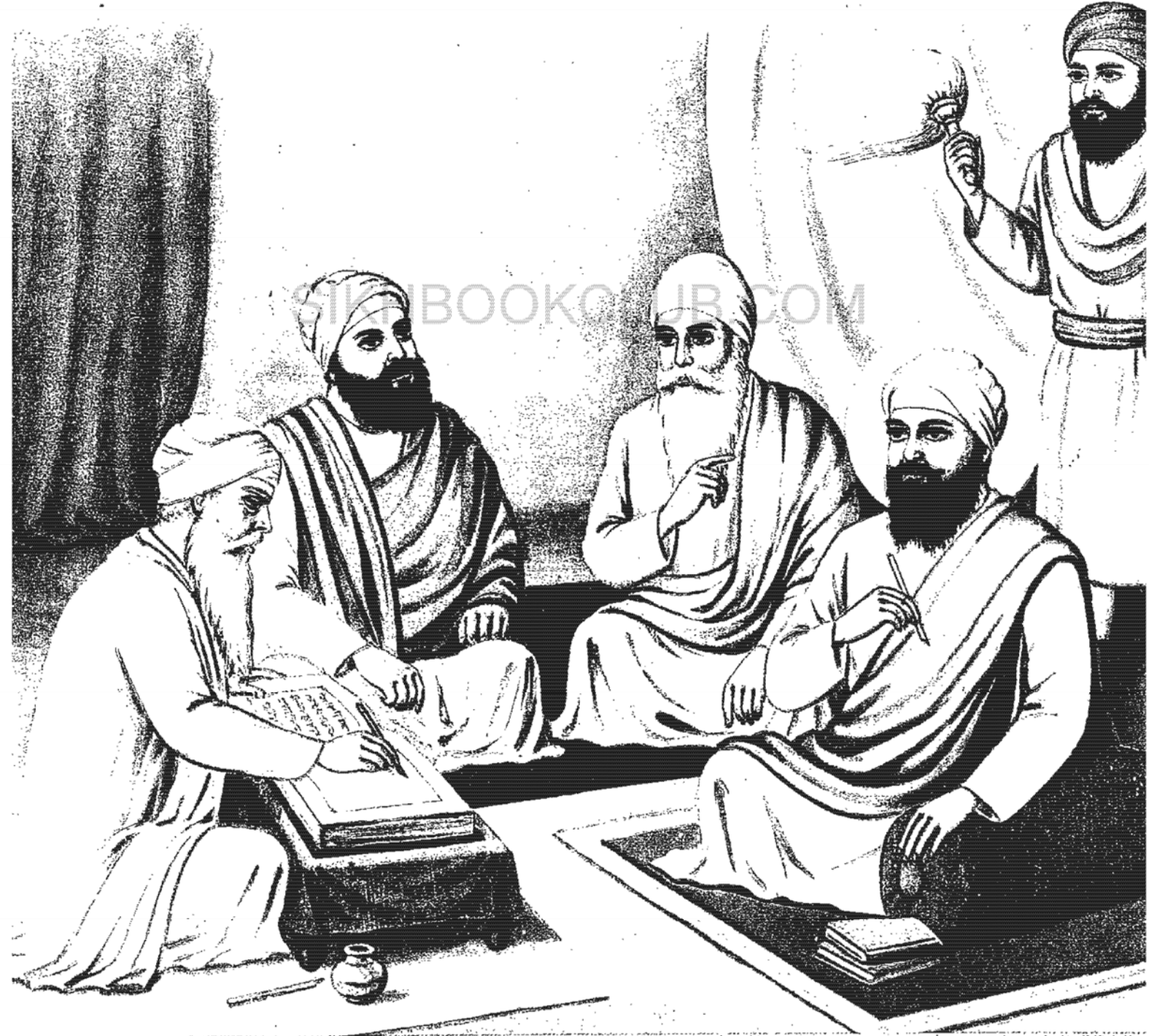
गुरु अंगद देव जी पहले साखी सुन लेते थे फिर उसे पैड़े मोखे को लिखवाते थे। एक वर्ष में ही सारी जन्मसाखी तैयार हो गई।

उन दिनों में खडूर साहिब में शिवनाथ नामक एक योगी तपा रहता था। वह साधारण लोगों को मूर्ख बना कर धन लूटता था। एक साल खडूर में वर्षा न हुई। लोगों की फसलें सूखने लगीं। गांव के लोग इकट्ठे होकर तपे के पास गए और उसे कहने लगे कि हमारी फसलें सूख रही हैं, कृपा करके वर्षा करवाओ। योगी तपे ने कहा वर्षा गृहस्थी गुरु जी के यहां होने के कारण नहीं होती है। उसे गांव में से निकाल दोगे तो वर्षा अपने आप हो जाएगी। जब गुरु अंगद देव जी को इस बारे पता लगा तो वह खडूर छोड़कर बाहर जंगलों में चले गए। परन्तु वर्षा फिर भी न हुई।

जब बाबा अमरदास जी खडूर में गुरु जी से मिलने आए तो उन्हें पता लगा कि गुरु जी योगी तपे के कारण नगर छोड़ गए हैं। फिर वह गांव के किसानों के पास गए और उन्होंने कहा कि यदि आप वर्षा करवाना चाहते हो तो योगी तपे को अपने खेतों में ले जाओ। जिस खेत में भी तपा जाएगा, वहां वर्षा होगी। किसानों ने जब तपे को पकड़ कर बाहर निकाला तो उस समय बादल हो गया और जब वह खेत में लेकर गए तो वर्षा शुरू हो गई। सारे किसान फिर उसे खींच-खींच कर अपने खेतों में लिए जाते थे। इस खींचतान में ही योगी तपे की मृत्यु हो गई।

श्री गुरु अमरदास जी

गुरु अमरदास जी गांव बासरके ज़िला अमृतसर के रहने वाले थे। आप बड़े धार्मिक विचारों के थे और हर साल हरिद्वार स्नान करने हेतु जाते थे।

गुरु अंगद देव जी की सुपुत्री बाबा अमरदास जी के भाई बाबा माणिक चन्द के सुपुत्र से विवाहित थी। प्रात:काल नित्य बाबा जी को अपने भाई के घर से गुरुवाणी पढ़ने की आवाज़ आती। उनकी भाभी ने बताया कि बीबी अमरो के पिता जी गुरु अंगद देव जी गुरु नानक देव जी

की गद्दी पर विराजमान हैं। बीबी अमरो गुरु नानक की वाणी का ही पाठ करती है।

बीबी अमरो उन्हें खडूर साहिब में गुरु अंगद देव जी के पास ले गई। गुरु जी को जब पता लगा कि उनके समधी बाबा अमरदास जी उन्हें मिलने आए हैं तो वह आपको लेने के लिए बाहर आए।

श्री अमरदास जी कुछ दिन लंगर की सेवा करने के पश्चात गुरु अंगद देव जी के निजी सेवक बन गए और हर समय उनकी सेवा करने के लिए तत्पर रहते। उन्होंने यह दिनचर्या बना ली कि प्रातः तीन बजे उठकर ब्यास दरिया पर जाते और पानी की गागर भर कर ला कर गुरु अंगद देव जी को स्नान करवाते। फिर वह लंगर की सेवा में व्यस्त हो जाते, कुछ समय पढ़ाई करते और फिर सेवा में लग जाते। गुरुवाणी तो वह सोते-जागते भी पढ़ते रहते थे।

गोइंदे नाम का एक व्यापारी था। उसकी भूमि दरिया ब्यास के समीप थी। गोइंदा गुरु अंगद देव जी के दरबार में उपस्थित हुआ। उसने एक नवीन नगर के निर्माण में पेश आ रही मुश्किलों बारे प्रार्थना की। गुरु जी ने भाई गोइंदे की प्रार्थना स्वीकार कर ली और नगर बसाने में उसकी सहायता करने का विश्वास दिलवाया। उन्होंने बाबा अमरदास जी को नवीन नगर बसाने हेतु कहा।
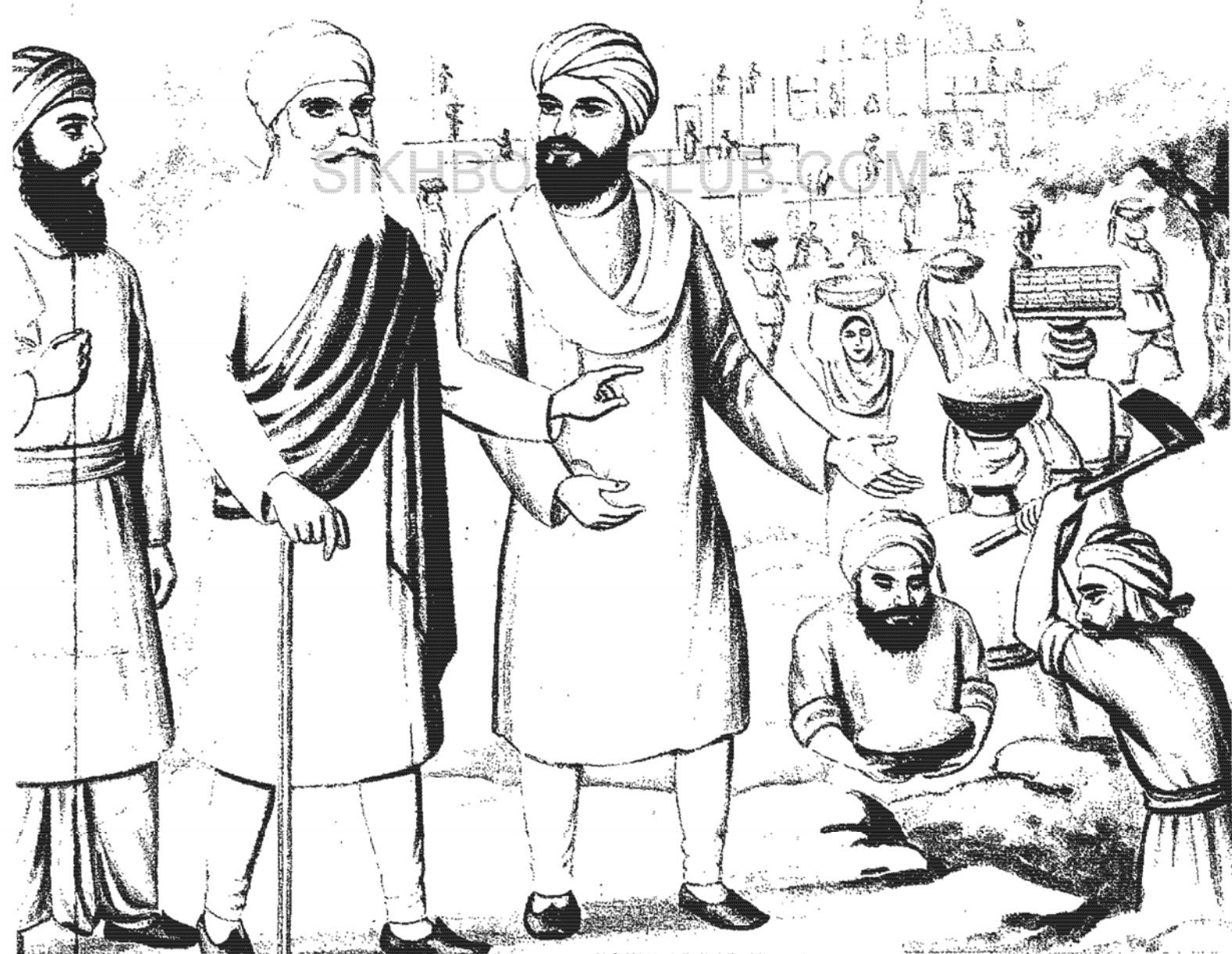
बाबा अमरदास जी ने निर्माण कार्य आरम्भ कर दिया। गुरु साहिब हेतु सत्संग घर और रिहायशी मकान बनाए गए। बाहर के लोगों हेतु भी बाज़ार एवं दुकानें बना दी गईं। इस तरह कुछ समय में गोइंदे की भूमि पर एक सुन्दर शहर बस गया। गोइंदे के नाम पर ही गुरु साहिब ने इसका नाम गोइंदवाल रखा। फिर गुरु अंगद देव जी ने बाबा अमरदास जी को आज्ञा की कि वह अपना सारा परिवार लेकर गोइंदवाल में निवास करें। कुछ समय पश्चात उन्हें गुरुगद्दी सौंप दी। गुरु अमरदास जी को 29 मार्च, 1552 ईस्वी को गुरुगद्दी पर बिठा दिया गया। बाबा बुड्ढा जी ने उनके माथे पर तिलक लगाया।

एक दिन गुरु जी ने अपने भतीजे सावन मल को बुलाया और उसे एक रुमाला बख्शिश करके हरिपुर के पहाड़ी राजे के पास भेजा कि वह शीघ्र ही इमारती लकड़ी का प्रबंध करे।

उस समय राजे का लड़का बहुत बीमार हो गया। जब सावन मल वहां पहुंचा तो राजे ने अपने लंड़के के दुख बारे बताया। भाई सावन मल ने कहा, "घबराने की कोई बात नहीं, इन वैद्य, हकीमों को दूर कर दो, बच्चे को किसी औषधि की आवश्यकता नहीं।"

फिर वह लड़के के पास गए और गुरु अमरदास जी द्वारा बख्शिश किया रुमाल बच्चे के मुंह पर फेरा। बच्चा उसी समय ठीक हो गया। राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसने भाई सावन मल को रियासत में आने का प्रयोजन पूछा। भाई सावन मल ने उसे सब कुछ बता दिया कि गोइंदवाल के निर्माण हेतु इमारती लकड़ी की आवश्यकता है। राजा हरिचन्द उसी समय मान गए और अपने

आदमियों की निगरानी में उन्होंने लकड़ियां एवं शहतीरियां दरिया ब्यास में धकेल दीं ताकि गोइंदवाल जाकर प्राप्त की जा सकें।

राजा परिवार सहित गोइंदवाल की ओर चल पड़ा। जब राजा रानियों के साथ दर्शनों को गया तो एक रानी ने घूंघट निकाला हुआ था।

गुरु जी ने जब घूंघट में आती रानी को देखा तो सहज स्वभाव वचन किए, "यह कौन-सी पगली है जो गुरु-घर की मर्यादा नहीं जानती। यदि इसने दर्शन ही नहीं करने थे, फिर किस लिए आई है?"

महाराज का वाक्य होते ही वह रानी पागल हो गई और जंगलों को भाग गई। बहुत खोज की परन्तु रानी मिल न सकी। सच्च निसच्च गुरु-घर का बड़ा प्रेमी सिक्ख था। एक दिन जब लकड़ियां काटने हेतु वह जंगल को जा रहा था तो पीछे से आकर किसी ने उसे ऐसा आलिंगन किया कि उससे छुड़ाया ही न जाए। उसकी कुल्हाड़ी नीचे गिर गई और रस्सी पैर में लपेटी गई। जब उसने ज़ोर से आलिंगन छुड़वाया तो उसने देखा कि उसके सामने एक पागल औरत हंसती जा रही थी। फिर वह औरत जंगल में लुप्त हो गई। उसने वापिस आकर गुरु जी को सारी बात बताई। गुरु जी ने कहा, "यह वही रानी है जो घूंघट निकाल कर आई थी।"

उसने गुरु जी से उनकी एक खड़ाऊँ मांग ली। उस खड़ाऊँ को लेकर वह जंगल में घूमता रहा। एक स्थान अकस्मात ही उसे पागल रानी मिल गई। उसने उस समय वह खड़ाऊँ रानी को स्पर्श करवा दी।

खड़ाऊँ स्पर्श करते ही रानी स्वस्थ हो गई और गोइंदवाल आ गई। गुरु जी ने उसे सुन्दर वस्त्रों की बख्शिश की और फिर उसका सच्च निसच्च से विवाह कर दिया।

गुरु अमरदास जी की उपमा में इतनी वृद्धि हो गई कि हज़ारों की संख्या में संगत नित्य दर्शनों को आती। परन्तु इस सब कुछ को गुरु अंगद देव जी के छोटे सुपुत्र दातू जी बर्दाश्त नहीं कर रहे थे।

बाबा दातू ने जब गुरु साहिब का तेज-प्रताप देखा तो वह जलभुन गया। वह घोड़े से उतरा और सीधा गुरु जी की तरफ गया। उसने क्रोध में आकर एक टांग गुरु जी को मारी। गुरु जी तख्त से नीचे गिर गए। गुरु अमरदास जी अगले दिन प्रातः उठे और घोड़ी पर बैठ कर बासरके चले गए। वहां जाकर वह गांव से बाहर एकांत में बनी एक कोठरी में विराज गए।

उधर बाबा दातू जी ने गुरु जी के घर में से धन-दौलत लूट लिया और एक खच्चर पर लाद कर खडूर साहिब की ओर चल पड़ा। मार्ग में उसे कुछ डाकू मिले जिन्होंने उससे सारा धन लूट लिया और उसकी टांगों पर छड़ियां मारीं। इस तरह वह बहुत दुखी होकर खडूर साहिब पहुंचा।

उनकी टांग की पीड़ा बहुत देर तक होती रही और उन्हें किसी तरह भी आराम न आया। तदुपरांत जब गुरु अमरदास जी जोती जोत समाने लगे तो बाबा दातू जी भी उन्हें मिलने गए और वहां जाकर गुरु जी से क्षमा याचना की। गुरु अमरदास जी ने कहा कि अब तो हम प्रभु में समाने लगे हैं, हमारे पश्चात जो गुरु रामदास जी हैं, उनके सुपुत्र गुरु अर्जुन देव जी आपकी इस टांग का दुःख दूर करेंगे।

उधर गोइंदवाल में जब संगतों को गुरु के दर्शन न हुए तो गुरु की तलाश करने के लिए वह बाबा बुड्ढा जी के पास गए। बाबा बुड्ढा जी गोइंदवाल आ गए।

बाबा बुड्ढा जी ने संगत से आकर पूछा कि घोड़ी कहां है, जिसके ऊपर गुरु जी सवार होकर गए थे। सिक्खों ने उस घोड़ी को लाकर प्रस्तुत किया। बाबा बुड्ढा जी ने उस घोड़ी को छोड़ देने के लिए कहा। घोड़ी आगे-आगे चल पड़ी और पीछे-पीछे बाबा बुड्ढा जी के साथ चुनिंदा श्रद्धालु सिक्ख चल पड़े। घोड़ी बासरके गांव के बाहर एक मकान के पास ठहर गई। बाबा बुड्ढा जी समझ गए कि गुरु जी यहां हैं, परन्तु दरवाजे के बाहर लिखा था, "जो यह दरवाजा खोले, न मैं उसका गुरु और न वह मेरा सिक्ख।" बाबा बुड्ढा जी ने कहा, "उदास होने की कोई बात नहीं, कोठरी के पीछे से छेद लगाओ।" मार्ग बन जाने पर अंदर गुजर गए। फिर बाबा बुड्ढा जी ने गुरु जी को गोइंदवाल वापिस जाने की प्रार्थना की। फिर गुरु जी को उनकी अपनी घोड़ी पर बैठा कर वह वापिस गोइंदवाल ले आए।

गुरु जी ने एक बावली निर्माण का सुझाव दिया। सब संगतों ने उसे स्वीकार कर लिया। बाबा बुड्ढा जी ने कुदाली से टक लगाया और बावली की खुदाई आरम्भ हो गई। कुछ समय में ही बावली तैयार हो गई। इस बावली में उतरने के लिए 84 सीढ़ियां बनाई गईं।

बावली का काम हो जाने के पश्चात यह देखा गया कि जल ऊपर नहीं आ रहा था। पानी के मार्ग में एक बहुत बड़ी चट्टान थी। उस चट्टान को तोड़े बिना पानी ऊपर नहीं आता था। गुरु जी ने उसी समय पास खड़े माणिक चन्द को बुलाया और अपनी ओर से हथौड़ा पकड़ा कर कहने लगे, "यह पकड़ो हथौड़ा और पूरे ज़ोर से चट्टान पर मारो, चट्टान टूट जाएगी।"

गुरु जी की आज्ञा मानकर माणिक चन्द बावली में उतर गया और उसने ज़ोर से चट्टान पर हथौड़ा मारा। तेज फुहारे की तरह पानी ऊपर आ गया। देखते ही देखते कुआं भर गया और माणिक चन्द बीच डूब गया। परन्तु गुरु की कृपा से वह ऊपर आ गया और सीढ़ियां चढ़कर बाहर निकल आया।

गुरु जी ने यह आदेश किया कि जो भी मनुष्य इन 84 सीढ़ियों पर बारी-बारी जपुजी साहिब का पाठ करेगा उसकी चौरासी कट जाएगी अर्थात् वह जन्म-मरण से रहित हो जाएगा। आज भी यह परंपरा चल रही है कि सिक्ख एक सीढ़ी पर जपुजी साहिब का पाठ करके फिर बावली में स्नान करके आते हैं। फिर दूसरी सीढ़ी पर बैठकर जपुजी साहिब का पाठ करते हैं और फिर स्नान करके आते हैं। इस तरह चौरासी सीढ़ियों पर पाठ करके 84 बार स्नान करते हैं।

बादशाह अकबर अपने अहलकारों सहित गोइंदवाल पहुंचा। यह एक बड़ी बात थी कि बादशाह एक फकीर के दर्शन करने हेतु नंगे पैर जाए। लाहौर के नवाब ने बेशक सड़क से लेकर गुरु साहिब के आवास तक गलीचे बिछा दिए थे, परन्तु अकबर ने गलीचों पर पैर न रखा, और रेत पर चलता गुरु के लंगर तक पधारा। यहां गुरु जी की मर्यादा को मुख्य रखते हुए वह पहले
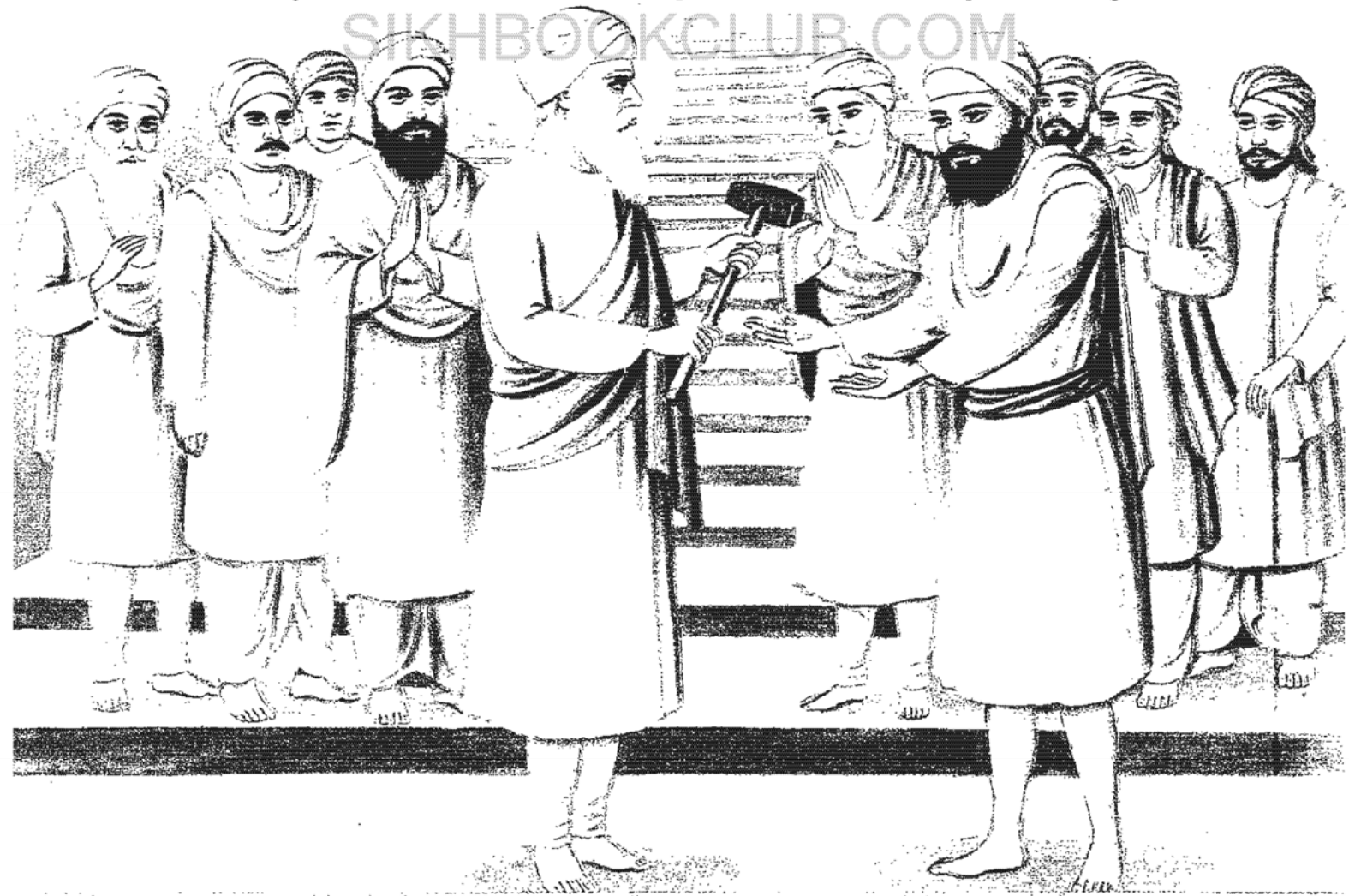
लंगर में चले गए। समस्त जातियों के लोगों को एक लंगर में पेट भर कर खाता देखकर बादशाह अकबर बहुत प्रसन्न हुआ।

फिर वह गुरु जी के पास गया और उनके प्रवचन सुने। गुरु जी ने उनको जीवन मार्ग बारे ज्ञान करवाया। गुरु के लंगर की प्रथा पर खुश होकर उसने लंगर के नाम जागीर लगाने की इच्छा व्यक्त की किन्तु गुरु जी ने यह कहकर सहायता लेने से इन्कार कर दिया कि लंगर केवल उपासकों की उग्राही से चलते हैं। जागीरों से चलने वाले लंगर नहीं रहते। उन्होंने यह भी कहा कि सब कुछ प्रभु का दिया मौजूद है। अकबर गुरु जी से इतना प्रभावित हुआ कि हर वर्ष वैसाखी पर वह एक लाख, बीस हजार रुपए गोइंदवाल में प्रार्थना हेतु भेजता था।

इसके उपरांत उसने गुरु जी के पास निवेदन करके गुरु की बीड़ का क्षेत्र बीबी भानी के नाम पट्टा लिख दिया। उस क्षेत्र में ही फिर अमृतसर नगर बसाया गया।

गुरु रामदास जी ने जब अमृतसर नगर बसाया तो उन्होंने गुमटाले इत्यादि गांवों से भी कुछ भूमि खरीदी। गुरु अमरदास जी स्वयं अमृतसर वाले स्थान पर गए थे और उन्होंने प्रगट किया था कि वहां एक बड़ा पवित्र सरोवर है जिस में अमृत का कुण्ड है। वह स्थान ही बाद में बीबी रजनी के पति के स्नान करने पर प्रगट हुआ था।

श्री गुरु रामदास जी

(गुरु) रामदास जी का जन्म चूना मण्डी, लाहौर में 25 सितम्बर 1534 को बाबा हरिदास जी के घर माता अनूपी जी के गर्भ से हुआ। उनका नाम रामदास रखा गया, परन्तु चूंकि घर में सबसे ज्येष्ठ पुत्र थे इसलिए उनका नाम भी जेठा ही प्रसिद्ध हुआ। जब आपके माता-पिता जी का स्वर्गवास हो गया तो आप अपने नाना जी के पास बासरके आ गए।

आप जी के नाना जी भी दुकान करते थे। परिवार बड़ा होने के कारण निर्वाह मुश्किल से चलता था। इस कारण यहां भी आकर आपके लिए कोई न कोई कार्य करना अनिवार्य बन गया। उस समय बासरके गांव के पास एक बहुत बड़ा सरोवर था जिसके तट पर पीपल के छायादार पेड़ थे। इन पेड़ों के नीचे आप जी ने घुंगनियों की छाबड़ी लगा ली। मधुरभाषी एवं मिलनसार स्वभाव के कारण आप निर्वाह योग्य पैसे कमा लेते थे।

जब सन 1546 में गुरु अमरदास जी को गोइंदवाल शहर बसाने और निवास वहां कर लेने का

आदेश हुआ तो भाई जेठा जी ने भी गोइंदवाल जाने का मन बना लिया। उस समय उनकी आयु 12 वर्ष की हो गई थी।

जब भाई जेठा जी गोइंदवाल पहुंचे तो उन्होंने देखा कि गोइंदवाल शहर का निर्माण कार्य ज़ोर-शोर से हो रहा है और गांव के लोग बड़े प्रेम से सेवा कर रहे थे। उन्होंने वहां जाकर घुंगनियों की छाबड़ी लगा ली। जब घुंगनियां बिक जातीं तो वह भी सेवा में जुट जाते।

गुरु अमरदास जी जब नित्य देखते कि भाई जेठा जी दीवान में भी उपस्थित होते हैं, सेवा भी पूरे तन-मन से करते हैं और मेहनत की कमाई करते हैं तो उन्होंने भाई जेठा जी को अपने पास बुलाया और कहा, "पुत्र! क्या इच्छा लेकर यहां आए हो?" भाई जेठा जी ने कहा, "मैं सब इच्छाएं त्याग कर यहां आया हूँ।" गुरु जी उसका यह उत्तर सुनकर बहुत प्रसन्न हुए।

जब गुरु अमरदास जी सन् 1552 ई. को गुरुगद्दी पर विराजमान हुए थे तो भाई जेठा जी की आयु अठारह साल की हो गई थी। वह एक दर्शनीय व्यक्तित्व के स्वामी थे। लंबा सुडौल शरीर एवं नूरानी चेहरा हर देखने वाले का मन मोह लेता था।

यह दिसम्बर 1552 की बात है कि एक दिन माता मनसा देवी ने गुरु अमरदास जी को कहा

कि बीबी भानी अब विवाह योग्य हो गई है इसलिए उसके लिए कोई योग्य वर ढूंढना चाहिए। जब गुरु जी ने सहज ही पूछ लिया कि लड़का कैसा होना चाहिए तो उसने कहा कि भाई जेठा जी जैसा। गुरु अमरदास जी ने कहा फिर उस जैसा तो वह ही है।

गुरु जी और माता मनसा देवी इस बात पर सहमत हो गए कि भाई जेठा जी से बीबी भानी का विवाह कर दिया जाए। कुछ दिनों पश्चात ही गुरु-मर्यादा अनुसार बीबी भानी का भाई जेठा (रामदास जी) से विवाह हो गया।

बीबी भानी जी और (गुरु) रामदास जी गुरु जी से अलग होकर अन्य कहीं नहीं जाना चाहते थे। इसलिए उन्होंने गुरु जी से निवेदन किया कि उन्हें निकट ही अलग मकान दे दिया जाए ताकि वह पहले की तरह ही उनकी सेवा करते रहें। गुरु जी ने अल्प समय में ही उनके लिए एक रिहायशी मकान तैयार करवा दिया। भाई जेठा जी ने गुरु-घर का दामाद बनने के पश्चात भी सेवा में कोई फर्क न आने दिया। वह पहले की तरह ही लंगर की सेवा करते, पंखा करते, पानी पिलाते और टोकरी ढोते थे। एक दिन लाहौर से कुछ संगत गुरु रामदास जी को मिलने हेतु आई। उन्होंने यहां आकर देखा कि गुरु रामदास जी गुरु-घर के दामाद बनने के उपरांत भी टोकरी ढो रहे हैं। इस बारे उन्होंने गुरु अमरदास जी के पास जाकर गिला-शिकवा व्यक्त किया। गुरु अमरदास जी ने कहा कि गुरु रामदास जी वह कुछ प्राप्त करने वाले हैं, जिस पर लाहौर शहर के लोग हमेशा ही गर्व करेंगे। जब लाहौर वासी गुरु रामदास जी से मिले तो गुरु रामदास जी ने उनके शिकवे बारे सुनकर कहा, "यह जो आपने मेरी शिकायत की है यह जायज नहीं है। मैं यह सब कुछ अपनी इच्छा से कर रहा हूँ। निसंदेह मैं गुरु-घर का दामाद हूँ परन्तु मैं गुरु-घर का अनन्य

सेवक भी हूँ।"

भाई जेठा जी की सेवा निष्काम थी। उनके हृदय में विनम्रता रहती थी और चित्त हर समय सिमरन में प्रवृत्त रहता था। उनकी ऐसी सेवा को देखकर गुरु अमरदास जी ने उनको गुरुगद्दी देने का मन बना लिया। उन्होंने उसी समय बाबा बुड्ढा जी को आदेश किया कि भाई जेठा (रामदास जी) को स्नान करवा कर सुन्दर वस्त्र पहनाए जाएं। फिर उन्होंने श्री रामदास जी को गुरुगद्दी पर बिठा कर पांच पैसे और नारियल रख कर तीन परिक्रमा की और माथा टेका। फिर सारी संगत ने आकर माथा टेका, इनमें गुरु जी का पुत्र मोहरी भी शामिल था। परन्तु जब गुरु अमरदास जी ने बाबा मोहन जी को गुरु रामदास जी के समक्ष माथा टेकने के लिए कहा तो उन्होंने स्पष्ट रूप में इन्कार कर दिया और कहा कि गुरुगद्दी पर हमारे परिवार का अधिकार है। हम गुरु हैं इसलिए हम किसी के समक्ष माथा नहीं टेकेंगे।

गुरु अमरदास जी एक नवीन शहर बसाना चाहते थे। जून 1570 ई. को उन्होंने श्री रामदास जी को अपने साथ लिया और उस स्थान पर पहुंचे जहां वह नया शहर बसाना चाहते थे। यह वह स्थान था जहां गुरु नानक देव जी भी 1497 ई. को आकर ठहरे थे। इस स्थान के बारे ही उन्होंने वचन किए थे कि यहां कोई नया तीर्थ प्रगट होगा और सिक्खी के प्रचार का केन्द्र भी बनेगा।

गुरु अमरदास जी श्री रामदास जी को शहर बसाने की हिदायत करके आप वापिस गोइंदवाल चले गए।

श्री रामदास जी ने सर्वप्रथम अपनी रिहायश हेतु मकान बनाने आरम्भ किए। इन रिहायशी मकानों को बाद में गुरु के महल कहा जाने लगा। इन रिहायशी मकानों के बिल्कुल समीप एक
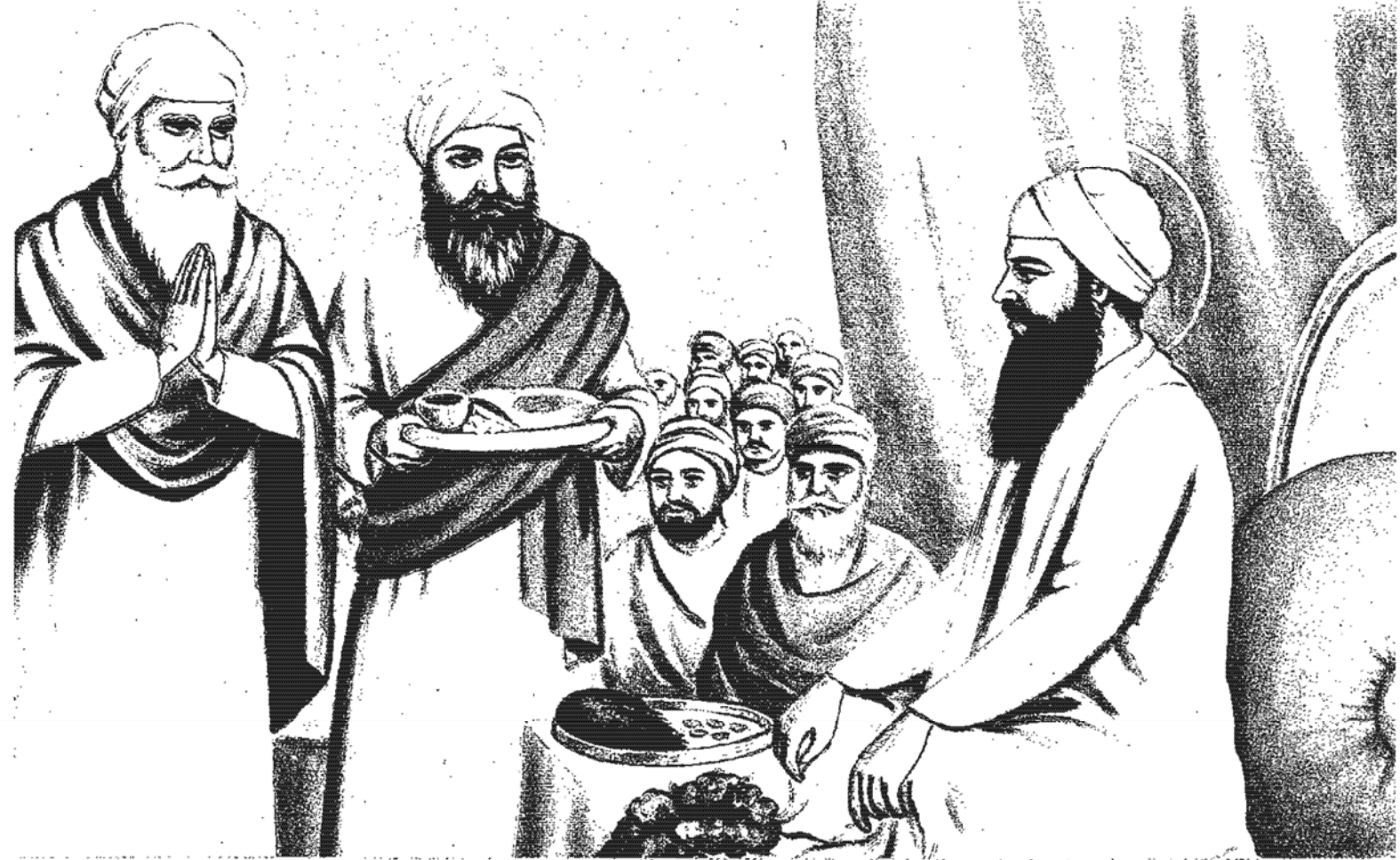
बाज़ार का निर्माण भी किया गया जिसे गुरु बाज़ार कहते हैं।

जब गुरु रामदास जी नगर का निर्माण करवा रहे थे तो उस समय एक अद्भुत घटना हुई। जिस अमृत कुण्ड बारे गुरु नानक देव जी और गुरु अमरदास जी संकेत कर गए थे, वह अकस्मात ही प्रगट हो गया।

इतिहास में लिखा है कि दूनी चंद नामक क्षत्रिय पट्टी कस्बे का एक बड़ा जमींदार था। एक दिन घमण्ड में आकर उसने अपनी पुत्रियों से पूछा कि आपको खाने को कौन देता है? बड़ी चार पुत्रियों ने तो बड़ी नम्रता से कहा, "पिता जी, आप ही सब कुछ देते हो, आप ही हमारा सहारा हो।" किन्तु सबसे छोटी कन्या जिसका नाम रजनी था, निडर होकर बोली, "परमात्मा ही देता है।" रजनी का यह उत्तर सुन कर दूनी चंद जलबुन गया।

उसका विवाह एक अपाहिज कोढ़ी से कर दिया। रजनी ने इस बात का कोई विरोध न किया और अपने कोढ़ी पति को परमेश्वर समझ कर उसकी सेवा करने लग गई। रजनी की गुरु-घर पर बड़ी श्रद्धा थी। जब उसे पता लगा कि गुरु रामदास जी सुल्तानविंड के समीप एक नगर का निर्माण कर रहे हैं तो वह अपने पति को एक टोकरी में उठाकर 'गुरु रामदास चक्क' पहुंच गई। वह सारा दिन गुरु-घर की सेवा करती और रोटी सांझे लंगर में से खा कर अपने पति को भी खिला आती। एक दिन एक बेरी के नीचे अपने पति को बैठा कर जब सेवा करने गई तो उसके पति ने देखा कि दो कौए एक रोटी के टुकड़े पर लड़ते-लड़ते उसके समीप तालाब में गिर गए।

जब वह बाहर निकले तो उनके रंग हंसों की तरह सफेद हुए थे। वह कोढ़ी भी रेंगता रेंगता उस तालाब तक पहुंचा और उसने तालाब में स्नान किया। जब वह बाहर निकला तो उसका कोढ़ बिल्कुल ठीक हो चुका था। वह दोबारा बेरी के नीचे आ बैठा। जब रजनी लंगर में से भोजन लेकर पहुंची तो उसने देखा कि एक सुन्दर युवक बेरी के नीचे बैठा था। वह उसे पहचान न सकी। उसके पति ने बहुत बार कहा कि वह उसका पति है, परन्तु वह न मानी और उसे साथ लेकर गुरु रामदास के पास आ गई। गुरु रामदास जी ने उसे तसल्ली दी कि वह ही उसका पति है।

फिर उन्होंने बाबा बुड्ढा जी को कहा कि जिस अमृत कुण्ड बारे गुरु अमरदास जी बता गए थे यह वही कुण्ड है। यहां हमें अब अमृत सरोवर बनाना चाहिए।

अगले दिन ही गुरु रामदास जी ने कड़ाह प्रसाद की देग तैयार करवाई तथा बाबा बुड्ढा जी, भाई गुरदास जी और अन्य गुरमुख सिक्खों को साथ लेकर अमृत कुण्ड के पास पहुंच गए। बाबा बुड्ढा जी को उन्होंने परमात्मा का नाम लेकर कुदाली का टक लगाने के लिए कहा, उसके पश्चात सारी संगत को कड़ाह प्रसाद बांट कर बाकायदा तौर पर सरोवर की खुदाई शुरू कर दी। जब क्षेत्र के लोगों को पता लगा कि अमृत कुण्ड में स्नान करके एक कोढ़ी भी स्वस्थ हो गया है तो लोग बड़ी श्रद्धा से कुदालियां, बाल्टे और टोकरियां इत्यादि लेकर सेवा के लिए पहुंच गए। रोगी स्नान करके स्वस्थ हो रहे थे और फिर गुरु जी के ही होकर सेवा में जुट जाते थे।

कुछ समय में ही सरोवर तैयार हो गया। इसे पानी से भरने से पूर्व इसके मध्य एक बड़ा ऊंचा थड़ा तैयार किया गया। जहां तक पहुंचने हेतु रास्ता छोड़ा गया था। इस थड़े पर ही सुबह शाम

को कीर्त्तन होता था, सरोवर के चारों तरफ कुएं लगाए गए थे और कुओं का पानी सरोवर में गिरता था।

पहले इस सरोवर में पानी नहीं ठहरता था, कुआं चलने से अथवा वर्षा होने से जो पानी सरोवर में इकट्ठा होता था वह रेतीली भूमि होने के कारण तुरंत भूमि में समा जाता था। इस बारे गुरु जी ने विचार बनाया कि इसका कोई स्थाई समाधान होना चाहिए। इस सरोवर से पूर्व गुरु जी ने संतोखसर का सरोवर तैयार करवाया था जिसकी चिकनी मिट्टी सारी सरोवर के बाहर की तरफ फैंकी गई थी। गुरु जी ने अपने सिक्खों को आदेश किया कि संतोखसर की सारी मिट्टी लाकर अमृत सरोवर में बिछा दी जाए। जब सारे सरोवर में मिट्टी बिछा दी गई तो पानी का धरती में समाना बंद हो गया और सरोवर हर समय ऊपर तक भरा रहता था।

अब यह बड़ा सुन्दर तीर्थ बन गया था। थड़े वाले स्थान पर नित्य प्रातः कीर्त्तन की ध्वनियां निंकलती थीं जो कि वेदों की ध्वनियों को भी मात दे रही थीं। अमृत सरोवर में स्नान करने से लोगों के दुःख दूर हो रहे थे और हर तरफ समृद्धि नजर आ रही थी।

इन दिनों में ही लाहौर से एक संगत आई जिन में भाई सिहारी मल भी थे। वह बिरादरी में से गुरु जी के बड़े भाई लगते थे। भाई सिहारी मल ने गुरु जी से विनती की कि लाहौर की संगतें आप जी के दर्शनों हेतु बहुत उत्सुक हैं। आपको अपनी जन्मभूमि में अवश्य जाना चाहिए।

गुरु जी ने उनकी विनती स्वीकार कर ली और लाहौर चले गए। जब वह लाहौर पधारे तो

लाहौर निवासी बड़ी संख्या में उन्हें लेने आए। उन्हें यह गर्व था कि गुरु रामदास जी की जन्मभूमि लाहौर है। वह यह भी समझते थे कि एक अनाथ बालक से वह जैसे सच्चे पातशाह बन गए हैं यह सब कुछ इनके परिश्रम का ही फल है।

गुरु रामदास जी पहले अपने निजी मकान में गए। उन्होंने अपने मकान को एक धर्मशाला में बदल दिया। लोगों की सुविधा हेतु वहां उन्होंने एक कुआं भी लगवाया।

अपने घर को धर्मशाला बनाकर वह भाई सिहारी मल के घर जा ठहरे। भाई सिहारी मल का घर काफी बड़ा था। यहां सिक्ख-संगतों की भीड़ लगी रहती थी। गुरु जी ने संगतों को मर्यादा में रहने हेतु कहा, जिस कारण संगत प्रातःकाल एवं सायंकाल को ही एकत्र होती। अमृतसर की तरह ही यहां गुरु का लंगर चल पड़ा और सुबह शाम कीर्त्तन का प्रवाह जारी हो गया।

लाहौर में काफी समय ठहर कर गुरु जी वापिस अमृतसर आ गए। उनके साथ उनका सारा परिवार भी था।

बाबा श्री चन्द जी गुरु नानक देव जी के बड़े साहिबज़ादे थे। आप ने उदासी मत धारण कर लिया था और यती सती रहकर उन्होंने सिक्ख धर्म का प्रचार किया था। वह बड़ी शक्तियों के स्वामी थे और कई अहंकारियों के उन्होंने हंकार तोड़े थे।

परन्तु जब उन्होंने अमृतसर नगर के बसाने, सुन्दर अमृत सरोवर का निर्माण और गुरु रामदास जी की अपार महिमा सुनी तो उन से रहा न गया और वह गुरु जी के दर्शनों हेतु स्वयं अमृतसर आए।

जब वह अपने शिष्यों सहित गुरु रामदास जी के दरबार में उपस्थित हुए तो गुरु जी स्वयं उठकर उनके अभिनंदन हेतु मिलने गए। गुरु पुत्र होने के कारण गुरु जी ने झुक कर प्रणाम किया और कुशलक्षेत्र पूछी। फिर गुरु जी उन्हें साथ लेकर दरबार में आ गए। अपने समीप ही बैठा लिया। बाबा श्री चन्द जी गुरु जी के चेहरे के तेज-प्रताप की ओर काफी देर देखते रहे। उनके मुख पर उन्हें वही नूर दिखाई दिया जो कि वह अपने पिता गुरु नानक देव जी के मुखमण्डल पर देखते होते थे। गुरु जी के मधुर व्यक्तित्व ने उन्हें मुग्ध कर दिया था। फिर गुरु जी के नूरानी चेहरे की ओर देखकर बोले, "इतनी सुन्दर दाढ़ी कैसे बढ़ा ली है?"

गुरु रामदास जी भी बाबा जी की ओर बड़े ध्यान से देख रहे थे और वह इस बात पर बड़े प्रसन्न थे कि जब से बाबा जी वहां आए थे, उनके चेहरे पर गुलाब के फूल की तरह मुस्कुराहट खिली हुई थी। गुरु जी नम्रता से बोले, "यह दाढ़ी आप जैसे महापुरुषों के चरण झाड़ने हेतु बढ़ाई है।"

यह उत्तर सुनकर बाबा श्री चन्द जी खिलखिला कर हंस पड़े और कहने लगे, "धन्य हैं आप और धन्य आपकी नम्रता, गुरु अंगद देव ने तो सेवा करके गुरुगद्दी ली थी, परन्तु आपने नम्रता एवं प्रेम से इसे प्राप्त किया है।"
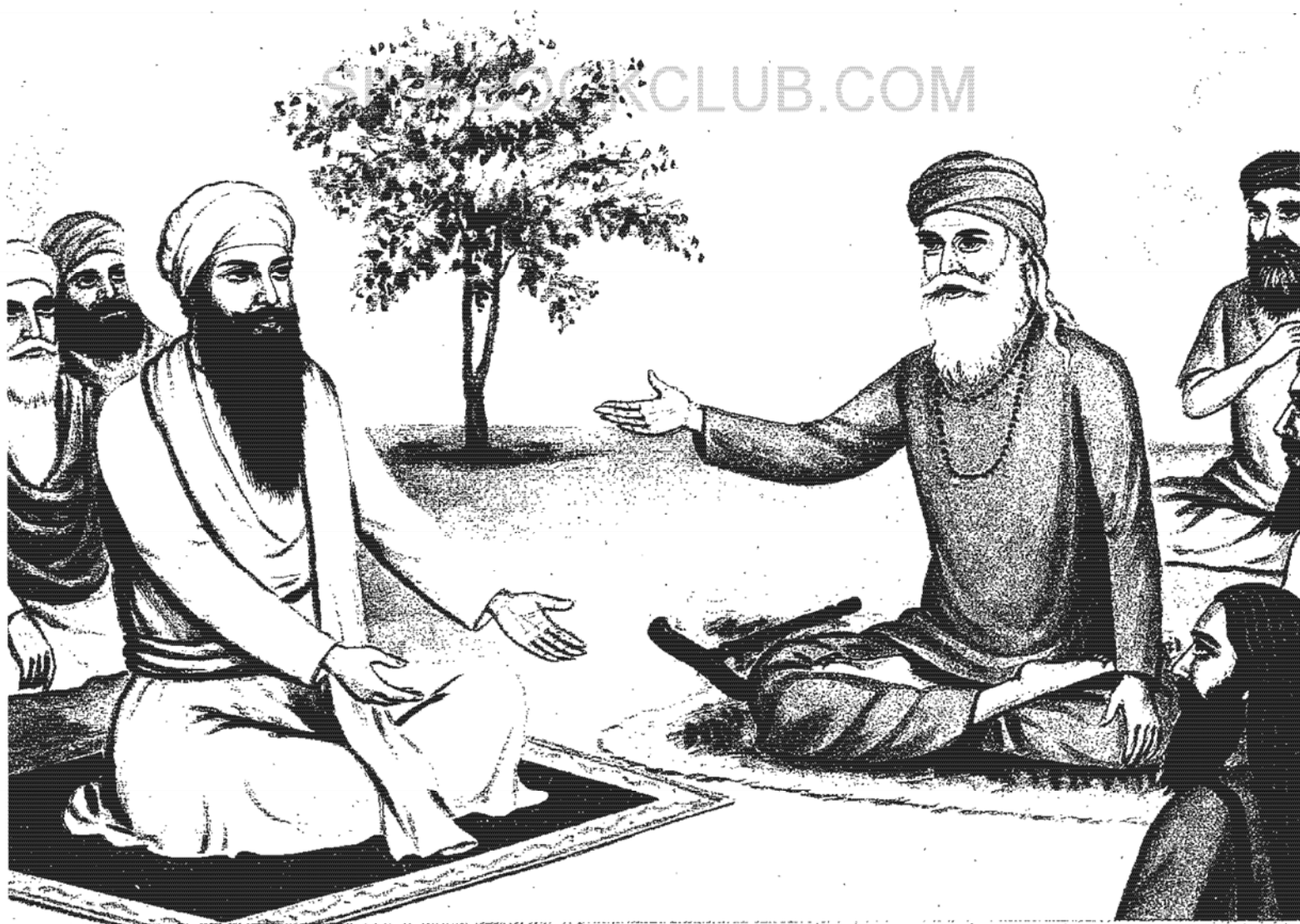
बाबा पृथी चन्द गुरु रामदास जी का बड़ा साहिबज़ादा था। आप जी का जन्म सन् 1557 ई. में गोइंदवाल में हुआ। आप अल्पायु से ही बड़े चंचल, ईर्ष्यालु एवं कुटिल स्वभाव के थे।

जब गुरु जी अमृतसर नगर एवं सरोवर का निर्माण करवा रहे थे तो वह संगत द्वारा आई कार-भेंट में हेराफेरी कर लेता था।

तदुपरांत वह सारे प्रबंध का संचालक बन गया और अपनी इच्छा से धन खर्च करता था और शेष छिपा कर रख लेता था। उसका गुरु जी, माता भानी जी एवं भाइयों से कोई स्नेह नहीं था। गुरु रामदास जी अपने छोटे साहिबजादे (गुरु) अर्जुन देव को बहुत प्रेम करते थे, इसलिए वह (गुरु) अर्जुन देव का भी विरोधी हो गया था।

वह चाहता था कि किसी भी ढंग से गुरुगद्दी प्राप्त की जाए। वह इतना अहंकारी हो गया था कि वह समझता था कि गुरुयाई को भी वही चला रहा था।

परन्तु अंतः उसकी पोल खुल गई और गुरु रामदास जी ने (गुरु) अर्जुन देव जी को अमृतसर बुला कर गुरुगद्दी सौंप दी। बाबा पृथी चंद ने इसका भी बहुत विरोध किया।

गुरु अर्जुन देव जी को भी वह बाद में तंग करता रहा। मसंदों से दसवंध बलपूर्वक वसूल लेता था। जब (गुरु) हरिगोबिंद साहिब का जन्म हुआ तो उसे मारने के भी उसने कई घटिया यत्न किए।

(गुरु) अर्जुन देव जी विवाह में शामिल होने के लिए लाहौर गए हुए थे। गुरु रामदास जी ने बाबा बुड्ढा जी को पांच सिक्ख देकर लाहौर भेजा कि वह (गुरु) अर्जुन देव जी को लेकर आएं। अमृतसर पहुंचने पर उन्हें 28 अगस्त 1581 को गद्दी का उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया, बाबा बुड्ढा जी ने गुरु अर्जुन देव जी को तिलक लगाने की रस्म अदा की। फिर गुरु रामदास जी ने तीन

परिक्रमा करके गुरु अर्जुन देव जी को माथा टेका।

गुरु रामदास जी दो दिन अमृतसर ठहर कर गोइंदवाल चले गए। गुरु अर्जुन देव, बाबा बुड्ढा जी एवं माता भानी जी भी उनके साथ थे। प्रथम सितम्बर 1581 को गुरु जी प्रातःकाल बावली साहिब में स्नान करने के पश्चात दीवान में आकर बैठ गए। फिर उन्होंने गुरु अर्जुन देव जी को अपने पास बुलाया और फुरमाया, "अब आप चार गुरु साहिबान का रूप हो, इसमें कोई भिन्नता नहीं है। आप ने अब सिक्ख संगतों का नेतृत्व करना है और अमृतसर सरोवर के मध्य हरिमन्दिर साहिब का निर्माण करना है।" फिर उन्होंने संगत को संबोधन करके कहा, "हमारा अब प्रभु में विलीन होने का समय आ गया है। आप ने अब किसी प्रकार का शोक नहीं करना, अपना मन कीर्त्तन में लगाना है।"

फिर उन्होंने माता भानी और बाबा बुड्ढा जी को अपने पास बुलाया। उनकी तरफ बड़ी प्रेम भरी नजरों से देखा। कुछ समय पश्चात संगत ने देखा कि गुरु जी की जोत, प्रभु की जोत से जा मिली। उसी समय कीर्त्तन आरम्भ हुआ। किसी ने नेत्र सजल न किए। सब ने ईश्वर की इच्छा को सहर्ष स्वीकार किया।

जब पृथीए को गुरु जी के जोती जोत समाने का पता लगा तो वह भी तुरंत गोइंदवाल पहुंच गया। वहां जा कर उसने अपने मामा मोहरी जी से कहा कि असली पगड़ी मुझे बांधी जाए। किन्तु बाबा मोहरी जी ने उनका विरोध किया और कहा, "असली पगड़ी गुरु अर्जुन देव जी को ही बांधनी है जो कि अब गुरुगद्दी के उत्तराधिकारी हुए हैं।" परन्तु गुरु अर्जुन देव जी जो नम्रता के अवतार थे, उन्होंने स्वयं ही पगड़ी पृथीए के सिर पर रख दी।
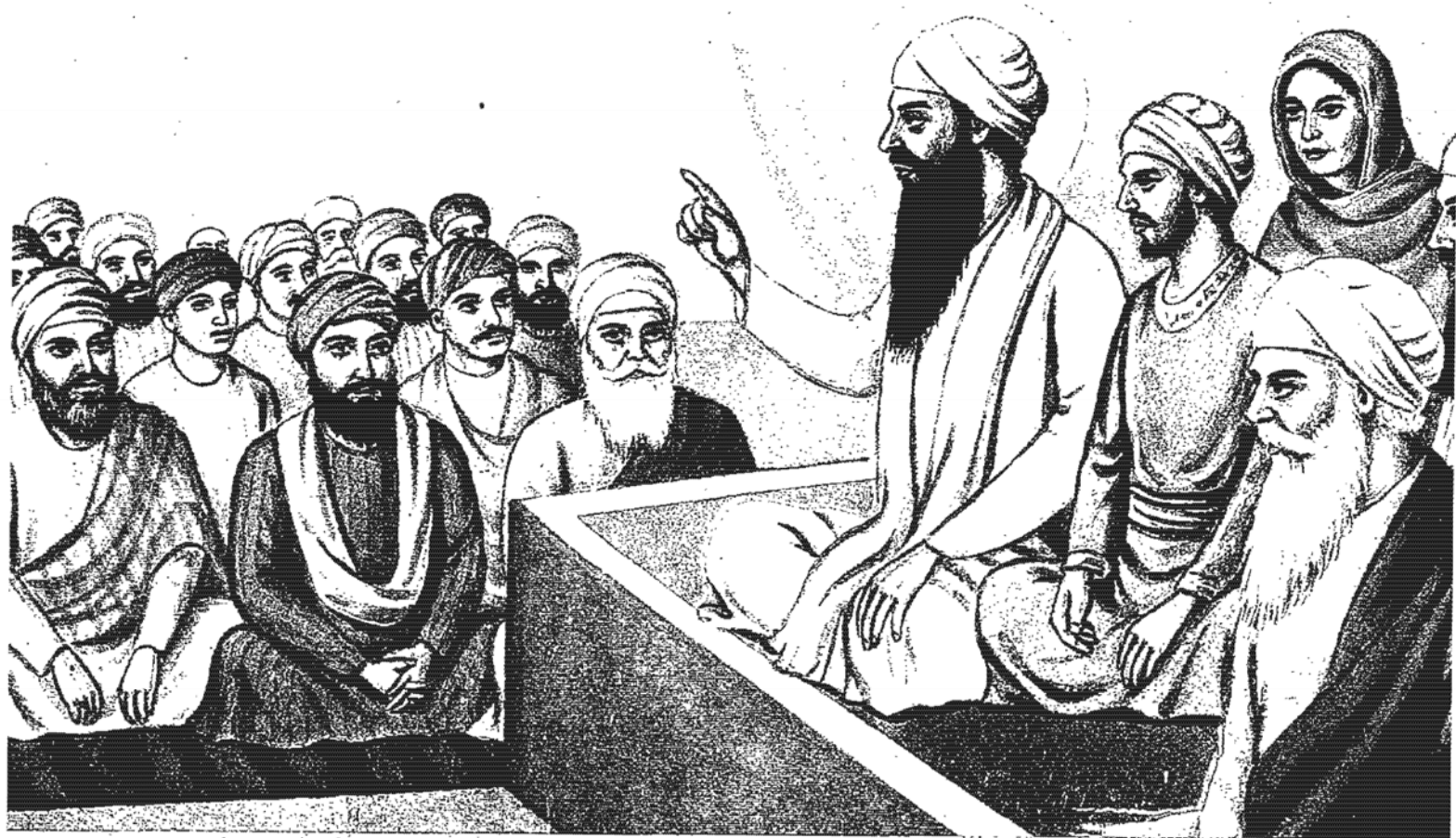
श्री गुरु अर्जुन देव जी

(गुरु) अर्जुन देव जी का जन्म 15 अप्रैल 1563 ई. को गोइंदवाल में हुआ। माता जी का नाम बीबी भानी एवं पिता जी श्री गुरु रामदास जी थे। बीबी भानी चूंकि गुरु अमरदास जी की सुपुत्री थी इसलिए वह उनके नाना जी लगते थे। जब गुरु अमरदास जी को यह पता लगा कि उनकी पुत्री के घर तीसरे पुत्र ने जन्म लिया है तो वह अपने दोहते को देखने हेतु गए। पहली दृष्टि देखते ही उन्होंने कह दिया, "यह महापुरुष बनेगा।" गुरु अमरदास जी अपने इस दोहते को बहुत प्रेम करते थे। इसलिए (गुरु) अर्जुन देव जी भी उनके पास जाने हेतु उत्सुक रहते थे।

उन्होंने बीबी भानी को भी हिदायत कर दी कि वह बालक को लेकर नित्य उनके पास आया करे। श्री अर्जुन देव जी की आयु उस समय चार वर्ष की थी। वह बड़ी दिलचस्पी से पढ़ते थे और शीघ्र ही राग विद्या में निपुण हो गए।

उनका गुरुवाणी से अत्यंत प्रेम था, वह गुरुवाणी को मौखिक याद करके और शाम को अपने पिता श्री रामदास जी को सुनाते। (गुरु) रामदास जी उनकी राग विद्या की इतनी निपुणता देख कर बहुत प्रसन्न होते।

गुरु अमरदास जी ने अपने दोहते की सगाई श्री कृष्ण चंद जो कि मऊ गांव के निवासी थे, उसकी पुत्री से कर दी एवं विवाह का दिन नियत कर लिया। गुरु-घर में विवाह की तैयारियां
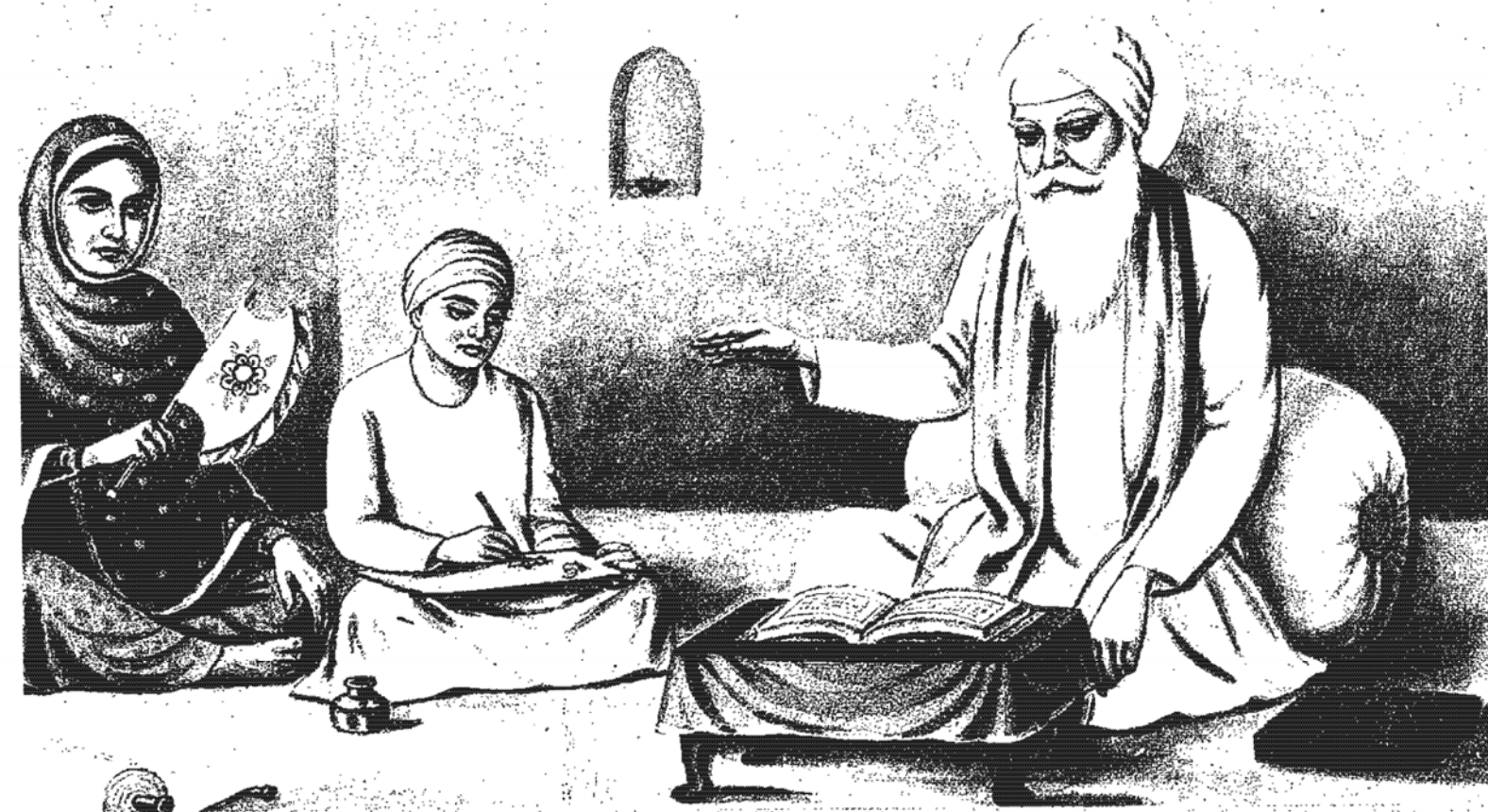
आरम्भ हो गईं।

दरिया ब्यास पार करके बारात गांव मऊ पहुंची। सर्वप्रथम गांव का मुखिया गुरु अमरदास जी को आकर मिला और गुरु जी के चरण स्पर्श करके कहने लगा, "सतिगुरु! हमारी एक प्रार्थना है कि इस गांव की परम्परा है कि दुल्हे को पहले घोड़ा भगा कर एक खूंटी नेज़े से उखाड़नी पड़ती है।"

मुखिया ने जंड के पेड़ से बनाई एक खूंटी खेत में स्थापित की हुई दिखाई। सभी बाराती शस्त्रबद्ध थे, उनके पास नेज़े एवं कृपाणें भी थीं। (गुरु) अर्जुन देव को एक नेज़ा दिया गया। उन्होंने नेज़ा पकड़ कर अपने घोड़े को बड़ा तेज़ दौड़ाया एवं पहली बार ही खूंटी उखाड़ कर गांव के लोगों को चकित कर दिया।

बारात वाले गुरु जी के इस जौहर को देखकर बहुत प्रसन्न हुए। वह यह नहीं समझते थे कि एक ग्यारह वर्ष का बालक घुड़सवारी में इतना दक्ष होगा और ऐसी खूंटी को सरलता से उखाड़ लेगा। यह देखकर गुरु अमरदास जी ने अपने दोहते को शाबाशी दी और कहा, "तूने यह अलौकिक कारनामा करके दिखाया है।" फिर सभी घुड़सवार एवं पालकी सवार नीचे उतर आए और गांव के चौधरी एवं अन्य माननीय सज्जनों के साथ पैदल ही चल पड़े। जब गुरु जी विवाह करके अमृतसर में आए तो अमृतसर की सभी स्त्रियां गुरु जी की नववधु को देखने आईं। उस दिन
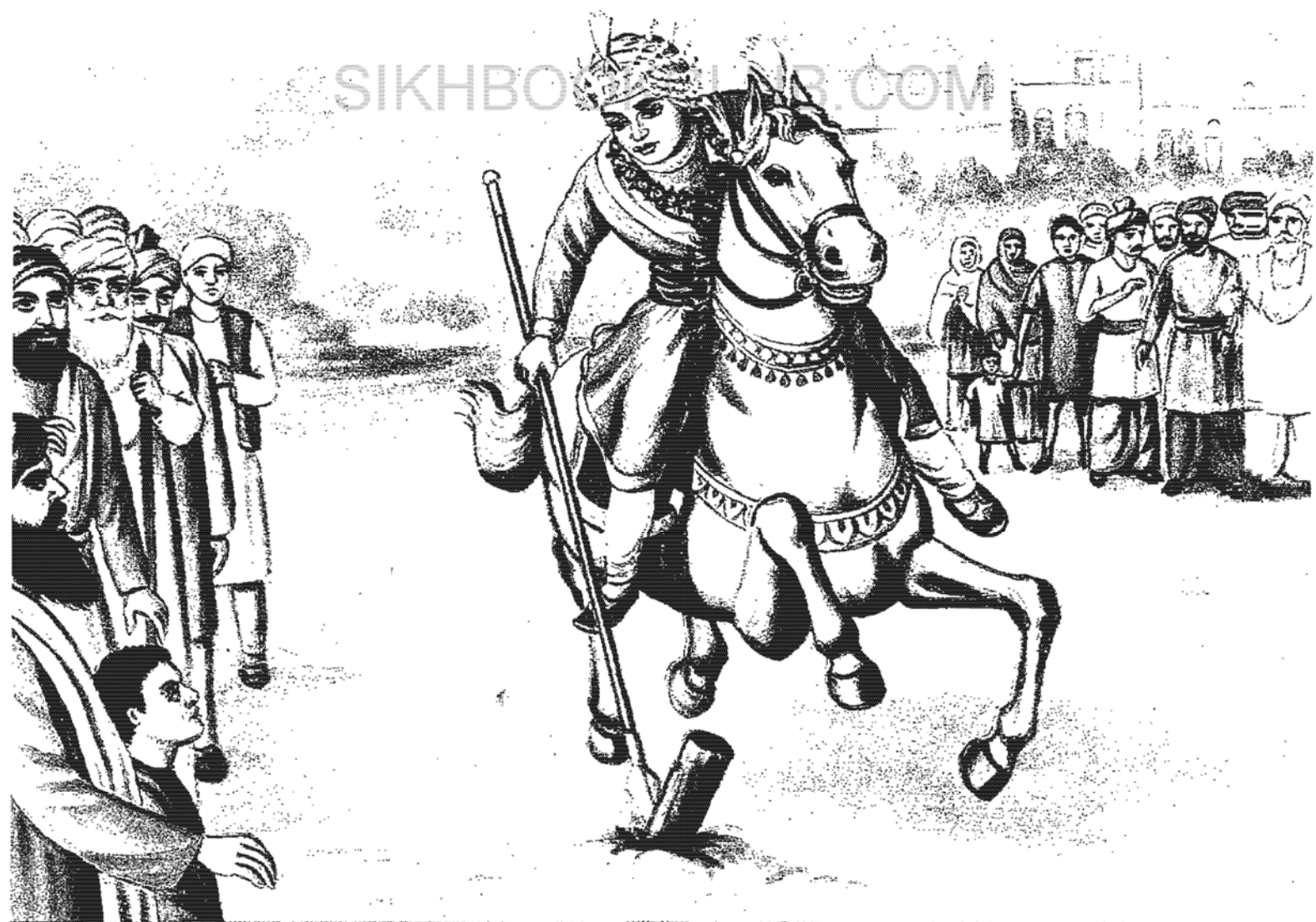
सारे अमृतसर नगर में दीपमाला की गई।

एक बार श्री गुरु रामदास जी ने श्री अर्जुन देव को एक विवाह में शामिल होने के लिए लाहौर भेजा। (गुरु) अर्जुन देव लाहौर चले गए, विवाह में शामिल हुए। विवाह की समाप्ति के पश्चात वह चूना मण्डी अपने पिता के पैतृक घर में आ गए। यहां नित्य (गुरु) अर्जुन देव स्वयं कीर्त्तन और कथा करते। उनकी आवाज़ बहुत सुरीली थी और वह सारे साज़ बजा लेते थे। गुरु-घर के प्रेमियों की तो मौज़ हो गई। दिन-ब-दिन संगत की संख्या में वृद्धि होने लगी। उन समयों में साईं मियां मीर बहुत पूजनीय संत माने जाते थे। बड़े-बड़े हाकिमों से लेकर बादशाह तक उन्हें सिजदा करने आते थे। गुरु जी साईं मियां मीर को मिलने हेतु उनके आवास पहुंच गए। साईं जी का भी गुरु नानक के अनुयायियों से प्रेम था। जब उन्हें पता लगा (गुरु) अर्जुन देव, अमृतसर नगर बसाने वाले गुरु रामदास के पुत्र हैं तो उन्होंने बड़े प्रेम से अपने पास बैठाया। (गुरु) अर्जुन देव जी के विचार सुनकर वह इतने प्रभावित हुए कि हमेशा के लिए वह उनके ही हो गए। (गुरु) अर्जुन देव जी अब अक्सर उनके पास जाने लग गए।

गुरु जी के वहां रहते दो साल से भी अधिक समय बीत गया, परन्तु गुरु रामदास जी ने उनको वापिस अमृतसर न बुलाया। उन्होंने बहुत व्याकुल होकर गुरु रामदास जी को तीन चिट्ठियां लिखीं, जिन्हें पृथीया छिपा लेता था। फिर उनके एक विशेष दूत के भेजने पर गुरु रामदास जी ने उन्हें अमृतसर बुला लिया और गुरुगद्दी सौंप दी।

भाई मंझ गुरु अर्जुन देव जी का बड़ा श्रद्धालु सिक्ख था। वह नित्य जंगल में जाता और लकड़ियां काट कर ले आता। सारा दिन वह किसी न किसी प्रकार की सेवा में लगा रहता। एक
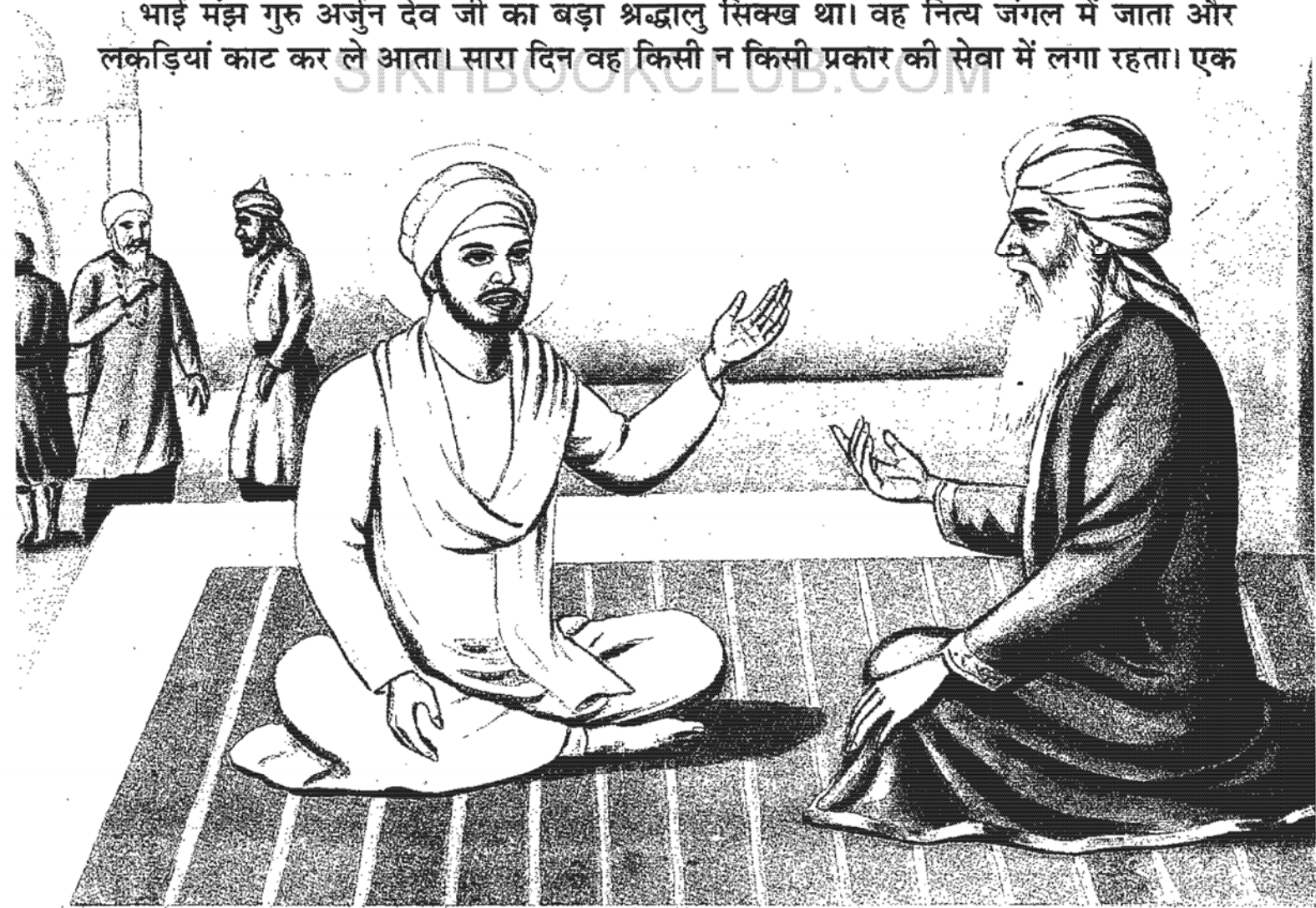
दिन जब वह लकड़ियों का गट्ठर उठाकर अमृतसर को आ रहा था तो बड़े जोर की अन्धेरी आई और चारों तरफ अन्धेरा हो गया। उस अन्धेरे में वह एक कुएं में गिर गया। परन्तु उसने लकड़ियों को भीगने न दिया अपितु अपने सिर पर ही टिका कर ही रखीं और स्वयं पाठ करने लग गया। जब वह रात को आवास में न पहुंचा तो दूसरे सिक्खों को चिंता हो गई और उसे ढूंढने हेतु निकल पड़े। एक कुएं में से उन्हें गुरुवाणी पढ़ने की आवाज़ आई। जब उन्होंने देखा तो भाई मंझ लकड़ियों का गट्ठर सिर पर टिकाकर कुएं में खड़ा पाठ कर रहा था। वह उसी समय गुरु के आवास की ओर भागे और रस्से लेकर आ गए। रस्सा लटका कर उन्होंने भाई मंझ से कहा, "रस्सा पकड़ कर बाहर आ जाओ।" परन्तु भाई मंझ ने कहा, "पहले यह सूखी लकड़ियां बाहर निकालो, फिर मैं भी निकल आऊंगा।

जब गुरु जी को इस घटना का पता लगा तो वह भी कुएं पर पहुंच गए। गुरु जी को कुएं पर देखकर भाई मंझ गुरु जी के चरणों पर नतमस्तक हो गया। गुरु जी ने कहा, "भाई मंझ तेरी कमाई अब सफल हुई है, कुछ मांगो।" भाई मंझ ने कहा, "गुरु जी! मुझे नाम का सिमरन दीजिए।" गुरु जी ने प्रसन्न होकर कहा :-

मंझ पिआरा गुरू को, गुर मंझ पिआरा।
मंझ गुरू का बोहिथा, जग लंघणहारा।

भाई मंझ के परिश्रम को मुख्य रखकर गुरु जी ने उन्हें अपने गांव प्रचारक बना कर भेज दिया।

गुरु अर्जुन देव जी ने हरिमन्दिर साहिब की तैयारी का प्रस्ताव बनाया। जब हरिमन्दिर साहिब की नींव रखने का प्रश्न उठा तो गुरु जी ने नींव रखने वाला सबसे योग्य एवं उपयुक्त महापुरुष

साईं मियां मीर को ही चुना। साईं मियां मीर हिन्दुओं एवं मुसलमानों का एक सांझा पीर था। उन्होंने 3 अक्तूबर, 1588 ई. को श्री हरिमन्दिर साहिब की आधारशिला रखी।

साईं मियां मीर ने चार ईंटें चारों दिशाओं के मध्य एवं एक चारों के मध्य नींव के तट पर रखी। फिर गुरु साहिब ने सब मिस्त्रियों को बुलाया और उन्हें हरिमन्दिर साहिब के नक्शे बारे समझाया।

हरिमन्दिर साहिब की कुर्सी सरोवर के जल से ऊंची करके मेहराब बनाए गए। पूर्व दिशा की ओर हरि की पउड़ी बनाई गई और चारों तरफ परिक्रमाएं तैयार करवाई गईं। गुरु साहिब स्वयं अपनी निगरानी में निर्माण करवाते थे।

हरिमन्दिर साहिब के निर्माण में पूरे तीन साल लग गए। सम्पन्न हो जाने पर गुरु जी ने धन्यवाद के तौर पर सूही राग में यह शब्द उच्चरित किया:-

संता के कारजि आपि खलोइआ हरि कंमु करावणि आइआ राम॥
धरति सुहावी तालु सुहावा विचि अंम्रित जलु छाइआ राम॥

(पृष्ठ ७८३)

श्री हरिमन्दिर साहिब का निर्माण हो जाने के पश्चात नित्य का दरबार यहां लगने लग गया। कीर्त्तनिए कीर्त्तन करके संगतों को कृतार्थ करने लगे।

श्री हरिमन्दिर साहिब की रचना भी अलौकिक थी। मुसलमान पश्चिम दिशा की ओर शीश
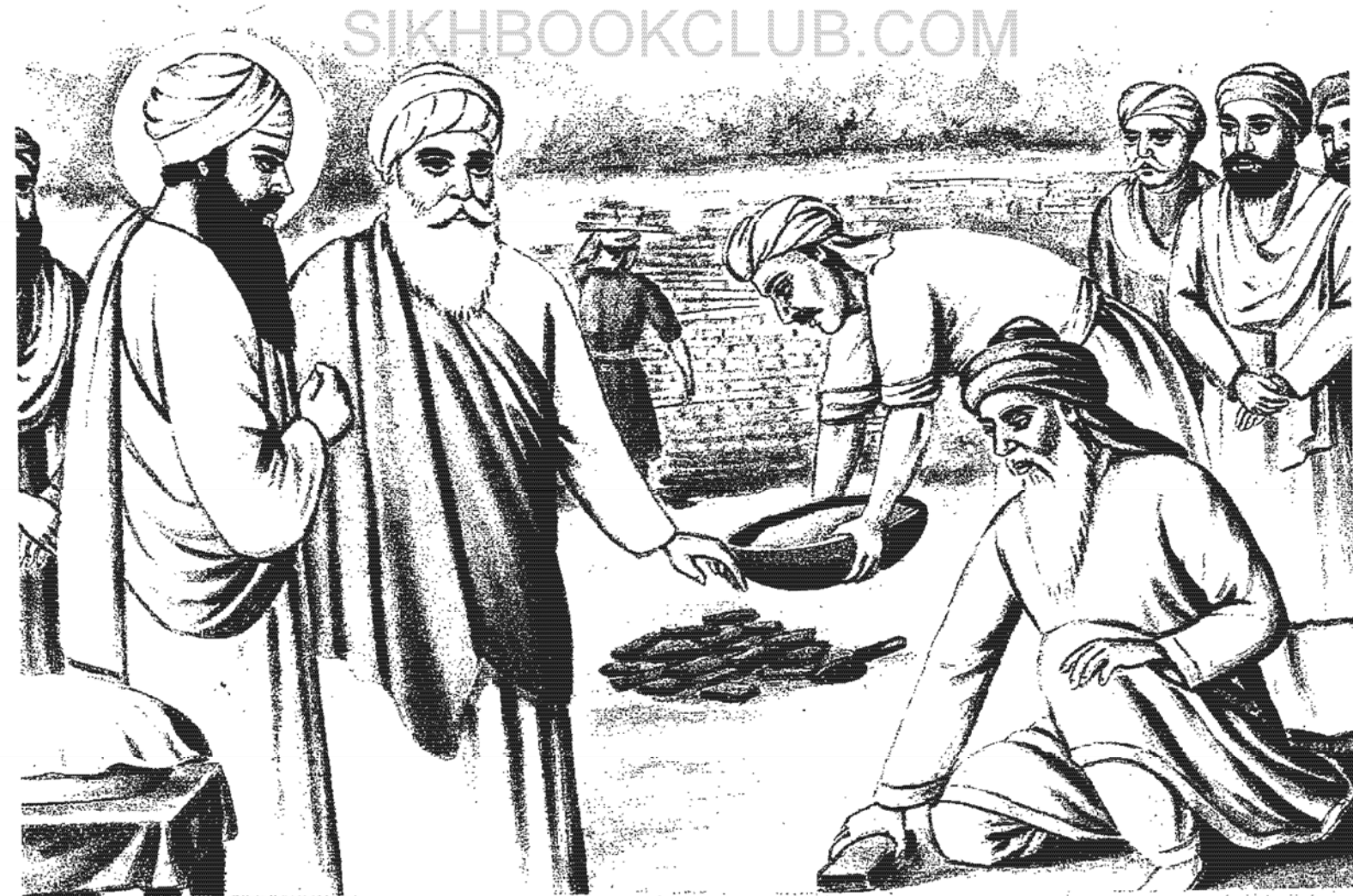
निवाते हैं, जबकि हिन्दू पूर्व दिशा की ओर प्रार्थना करते हैं। परन्तु हरिमन्दिर के दरवाजे न पूर्व की ओर हैं न पश्चिम की ओर। चारों दरवाजे ही हर समय खुले रहते हैं और प्रत्येक वर्ण को यहां आने की छूट है किसी को बंदिश नहीं है।

भूमि का पट्टा अपने नाम करवा कर गुरु अर्जुन देव जी ने दिसम्बर 1594 में करतारपुर नगर की नींव अपने करकमलों से रखी। मोढ़ी स्थापित करने की बजाय टाहली का एक बहुत बड़ा स्तम्भ स्थापित किया गया। कुछ रिहायशी मकान बनाने के पश्चात् गुरु जी ने एक बड़ा कुआं लगवाया। इस कुएं का नाम उन्होंने 'गंगसर' रखा। जब कुएं का निर्माण सम्पूर्ण हुआ तो गुरु जी ने सब संगत को आज्ञा की कि अब किसी को गंगा जाने की आवश्यकता नहीं। इस कुएं में गंगा बहती है। गंगसर का स्नान गंगा के स्नान से भी उत्तम है।

एक साधू गंगा नदी में स्नान करने जा रहा था। गुरु जी ने उसे बुला कर कहा, "हमारा भी यह लोटा लेते जाओ और गंगा नदी के पवित्र जल को हमारे लिए लेते आना।" साधू मान गया और गुरु जी का लोटा लेकर वह हरिद्वार पहुंच गया। जब वह स्नान करने लगा तो नदी का तेज प्रवाह लोटे को बहा कर ले गया। साधू फिर खाली हाथ ही गुरु जी के पास पहुंचा। उस साधू ने गंगा जल लाने के बारे अपनी सारी कहानी गुरु जी को बताई। गुरु जी ने बताया हमारा लोटा इस कुएं में पहुंच गया है। फिर उन्होंने एक आदमी को कुएं में उतारा और वह लोटा लेकर बाहर आ गया।

जब उस साधू ने उस लोटे को देखा, वह वही लोटा था जो गुरु साहिब ने उसे दिया था। यह देखकर वह साधू बहुत चकित हुआ।

बाबा बुड्ढा जी का जन्म भाई सुघा जी के घर माता गौरां जी के गर्भ से गांव कत्थूनंगल, ज़िला अमृतसर में 7 कार्तिक सम्वत् 1563 को हुआ था।

छोटी आयु में बहुत बुद्धिमानों वाली बातें करने के कारण गुरु नानक देव जी उसे बुड्ढा कहते थे और उसका नाम ही बाबा बुड्ढा पड़ गया। करतारपुर जाकर उसने गुरु-घर की बहुत सेवा की।

वह गुरु अमरदास, गुरु रामदास, गुरु अर्जुन देव एवं गुरु हरिगोबिंद जी को तिलक लगाकर गुरु पदवी की स्वीकृति के साक्षी बने।

गुरु अर्जुन देव जी के घर काफी लम्बे समय से पुत्र पैदा नहीं हुआ था, जिस कारण पृथी चंद बड़ा खुश था कि उसका पुत्र मेहरबान ही गद्दी का उत्तराधिकारी होगा। यह देख कर माता गंगा जी बहुत व्याकुल हुए और उन्होंने पुत्र-रत्न की देन बारे प्रार्थना की। गुरु अर्जुन देव जी ने कहा कि बाबा बुड्ढा जी एक बड़े ब्रह्मज्ञानी हैं। उनके पास साधारण वस्त्रों में पुत्र की देन मांगने जाओ।

माता गंगा जी गुरु अर्जुन देव जी के कहने पर पुत्र का वर लेने हेतु बाबा बुड्ढा जी के पास स्वयं भोजन तैयार करके सिर पर उठाकर लेकर गए। जब बाबा बुड्ढा जी ने माता जी को आते देखा तो कहने लगे, "आज तो बहुत भूख लगी थी, माता जी अपने पुत्र हेतु रोटी लेकर आए लगते हैं।" फिर वह मिस्सियां रोटियां खाने लग गए और प्याज तोड़ते उन्होंने वर दिया कि उनके घर ऐसा बलशाली पुत्र पैदा होगा जो मुगलों के इस तरह सिर फोड़ेगा जैसे मैं यह प्याज कुचल रहा हूँ।"

बाबा बुड्ढा जी के वर अनुसार 6 आषाढ़ सम्वत् 1652 ई. को श्री गुरु हरिगोबिंद जी का जन्म गांव वडाली में हुआ। यह सूचना मिलते ही परिवार एवं संगतों में प्रसन्नता छा गई। दूसरी तरफ

बाबा पृथी चन्द और उसकी पत्नी करमो के हृदय दुखी हो गए।

परन्तु पृथी चन्द कहां पीछे हटने वाला था, पृथी चन्द ने एक सपेरे को भेजा कि वह सांप का तमाशा दिखाते-दिखाते एक जहरीला सांप श्री हरिगोबिंद की ओर छोड़ दे। सपेरा बीन बजाता तमाशा दिखाता गुरु जी के घर पहुंच गया। सभी सेवक और माता जी बालक हरिगोबिंद सहित तमाशा देखने आए। जब सपेरे ने देखा कि बालक सांपों की ओर देख कर हंस रहा है तो उसने एक सांप उसकी तरफ भेजा। साहिबज़ादे ने जब सांप को देखा तो वह भयभीत नहीं हुआ अपितु उस सांप को सिर से कस कर पकड़ लिया और धरती से उसका सिर रगड़ कर वहीं पर मार दिया। सभी यह आश्चर्यजनक लीला देखकर हैरान हो गए।

इसके पश्चात पृथी चन्द ने एक लड़के को कुछ विषयुक्त मिठाई देकर भेजा। उस लड़के को उसने ऐसी कमीज पहनाई जिसके दोनों तरफ जेबें लगी हुई थीं। उसने उस लड़के की एक जेब में विषयुक्त मिठाई डाल दी और दूसरी जेब में विष रहित मिठाई डाल दी और उससे कहा कि वह पहले स्वयं शुद्ध मिठाई खा ले और तदुपरांत विषयुक्त मिठाई श्री हरिगोबिंद को खिला दे। परन्तु जब वह लड़का श्री हरिगोबिंद साहिब को मिठाई खिलाने लगा तो वह यह भूल गया कि उसकी कौन-सी जेब में विषयुक्त मिठाई थी। इस तरह वह स्वयं विषयुक्त मिठाई खा कर प्राण त्याग गया। इसके पश्चात पृथी ने एक ब्राह्मण नौकर के द्वारा भी श्री हरिगोबिंद जी को मारने की कोशिश की, परन्तु वह ब्राह्मण भी स्वयं ही मृत्यु का शिकार हो गया।
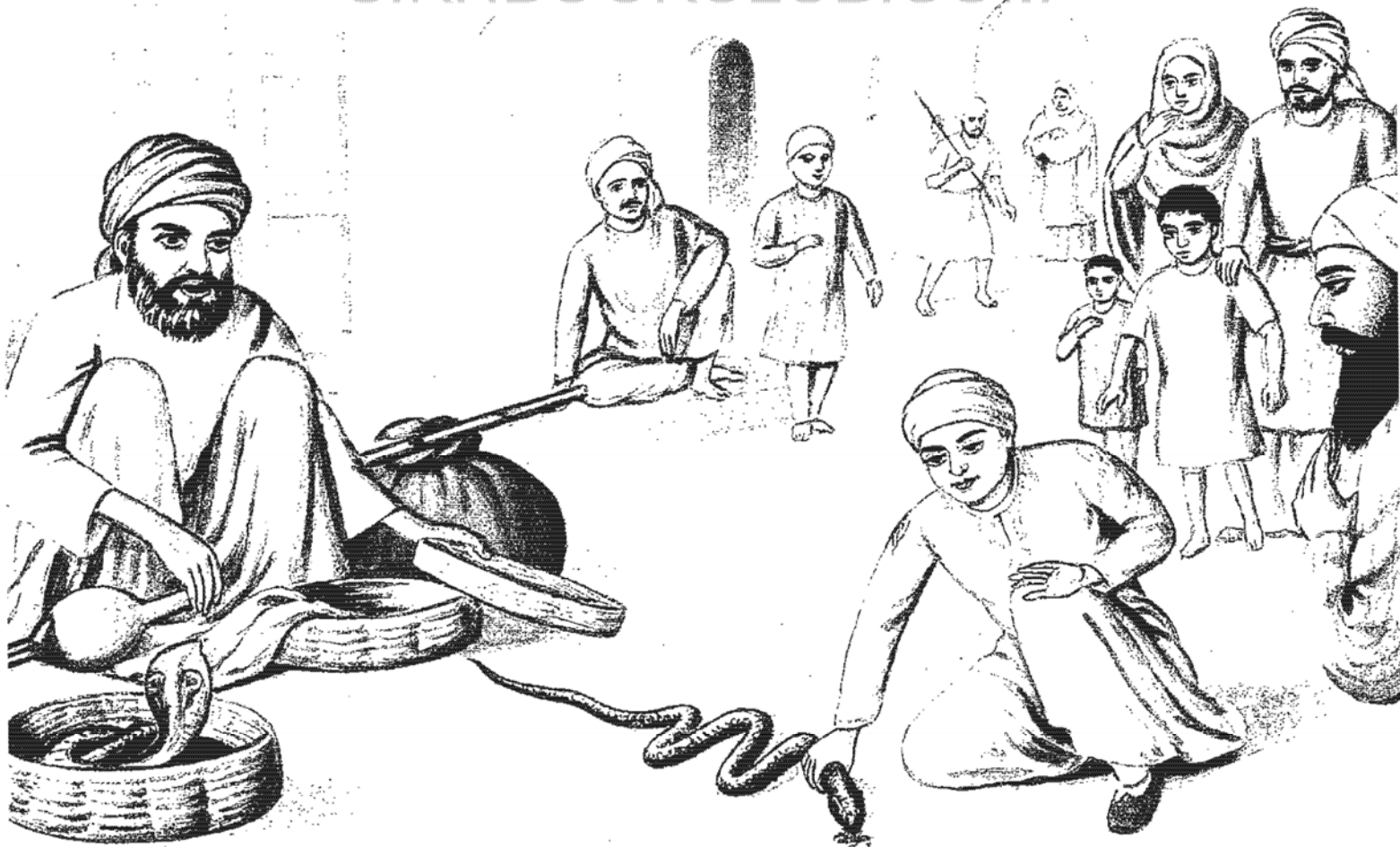
जब पृथी चन्द के सभी वार खाली गए और सारे अमृतसर नगर में यह प्रसिद्ध हो गया कि पृथी चन्द गुरु अर्जुन देव के सुपुत्र को मारना चाहता है तो सारा नगर उसके विरुद्ध हो गया। सारी सिक्ख संगतें उस पर थू-थू करने लगीं और कोई सिक्ख भी उसके पास किसी प्रकार की भेंट नहीं चढ़ाता था। पृथी चन्द एक प्रकार भूखा ही मरने वाला था यदि उसके पास गुरु रामदास जी के समय का चोरी किया लाखों का धन न होता। जब पृथी चन्द ने यह देखा कि सिक्ख संगतें उसके प्राणों की शत्रु बन गई हैं तो वह अमृतसर नगर छोड़कर अपने ससुराल गांव हेहर चला गया, जो लाहौर के समीप था।

एक बार पृथी चन्द को यह सूचना मिली कि उसका एक मित्र हाकिम सुलही खां उसके ससुराल गांव हेहर आ रहा है। पृथी चन्द ने उसकी बड़ी सेवा की। शाम को पृथी चन्द उसे अपने नए चालू किए ईंटों के भट्ठे को दिखाने के लिए ले गया। सुलही खां बड़ा घमण्डी एवं अक्खड़बाज था। उसके पास एक सबसे बढ़िया नस्ल का घोड़ा था। उस घोड़े पर भी उसे बहुत अभिमान था। जब उसका घोड़ा जलते भट्ठे के पास गया तो वह एक पक्षी के उड़ने के कारण डर गया और छलांग लगा कर भट्ठे की दीवार फांद कर सुलही खां सहित जलते भट्ठे में जा गिरा। पृथी चन्द शोर ही मचाता रह गया और सुलही खां जलकर भस्म हो गया।

आदि ग्रंथ को सम्पूर्ण करने में तीन वर्ष लग गए। जब बीड़ सम्पूर्ण हो गई तो दूर-दूर सिक्खों को सन्देश भेजे गए कि भाद्रों शुदि एकम सम्वत् 1661 को आदि ग्रंथ की बीड़ का प्रकाश श्री हरिमन्दिर साहिब में किया जा रहा है। संगतें उत्सुकता पूर्वक पहुंचीं। गुरु जी ने संगतों को संबोधित करते हुए कहा, "यह ग्रंथ संसार सागर पार करने हेतु एक जहाज़ बनाया है। जो व्यक्ति भी चित्त लगाकर पढ़े, सुने एवं विचार करेगा, वह सहज ही पार हो जाएगा।"

बाबा बुड्ढा जी के सिर पर रखकर बीड़ को दरबार साहिब लाया गया। बाबा बुड्ढा जी को प्रथम ग्रंथी नियुक्त किया गया। इस ग्रंथ के उस समय 975 पृष्ठ थे।

हरिमन्दिर साहिब पहुंच कर बीड़ को सजाए गए तख्त पर सुशोभित किया गया और गुरु जी ने बाबा बुड्ढा जी को वाक्य लेने हेतु कहा। बाबा बुड्ढा जी ने वाक्य लिया।

जब गुरु ग्रंथ साहिब को दरबार साहिब में रखा गया तो बाबा बुड्ढा जी ने प्रार्थना की, "इस ग्रंथ साहिब को रात्रिकाल कहां टिकाया जाएगा? गुरु अर्जुन देव जी उस समय अकाल तख्त साहिब वाले स्थान पर एक कक्ष बनवा कर उसमें विश्राम करते थे। गुरु जी ने उस कक्ष में एक नया सुन्दर पलंग लगाया और बाबा बुड्ढा जी को कहा कि ग्रंथ साहिब को उस पलंग पर रखा जाए। स्वयं गुरु अर्जुन देव जी ने पलंग के निकट धरती पर ही सोने का फैसला कर लिया। सिक्ख संगतें गुरु जी की इस नम्रता को देखकर और गुरु ग्रंथ साहिब की महिमा देख कर बहुत हैरान हुईं।
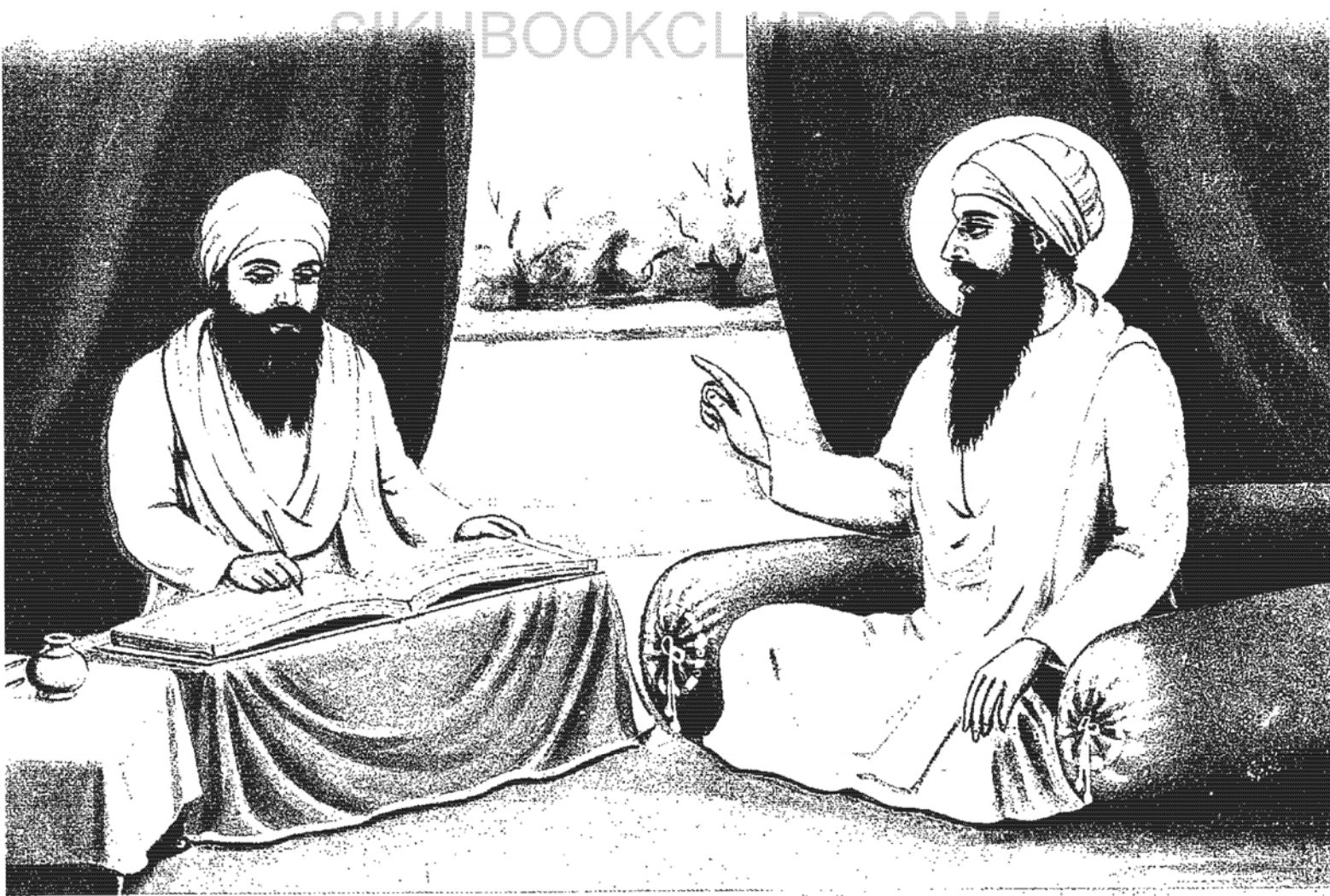
जहांगीर चन्दू वाली घटना घटित होने से पूर्व ही गुरु अर्जुन देव जी को शहीद करने के बारे में मन बना चुका था। वह तो केवल कोई बहाना ही ढूंढ रहा था। बहाना भी उसे उसके पुत्र खुसरो की बगावत करने से मिल गया। खुसरो गुरु अर्जुन देव को अपना मुरशद मानता था। जब वह पकड़े जाने के भय से काबुल की ओर भागा जा रहा था तो मार्ग में वह तरनतारन रुका। वह गुरु अर्जुन देव को मिला और लंगर में प्रसाद भी ग्रहण किया।

इस तरह बागी खुसरो का गुरु जी को मिलना, गुरु अर्जुन देव को शहीद करने के लिए जहांगीर को एक बढ़िया बहाना मिल गया।

पहले आषाढ़ महीने की तपती रेत में बिठा कर यातना दी गई। फिर गुरु जी को उबलते पानी की देग में बिठाया गया। फिर गर्म तवे पर बिठा कर गर्म रेत झुलसे हुए शरीर पर डाली गई।

इस तरह पांच दिन कष्ट दिए जाते रहे। छठे दिन अर्थात् 30 मई, 1606 ई. को जब गुरु जी शहीद हो गए तो उन्हें दरिया रावी के तट पर ले गए और उनके शरीर को जल में प्रवाह कर दिया गया।
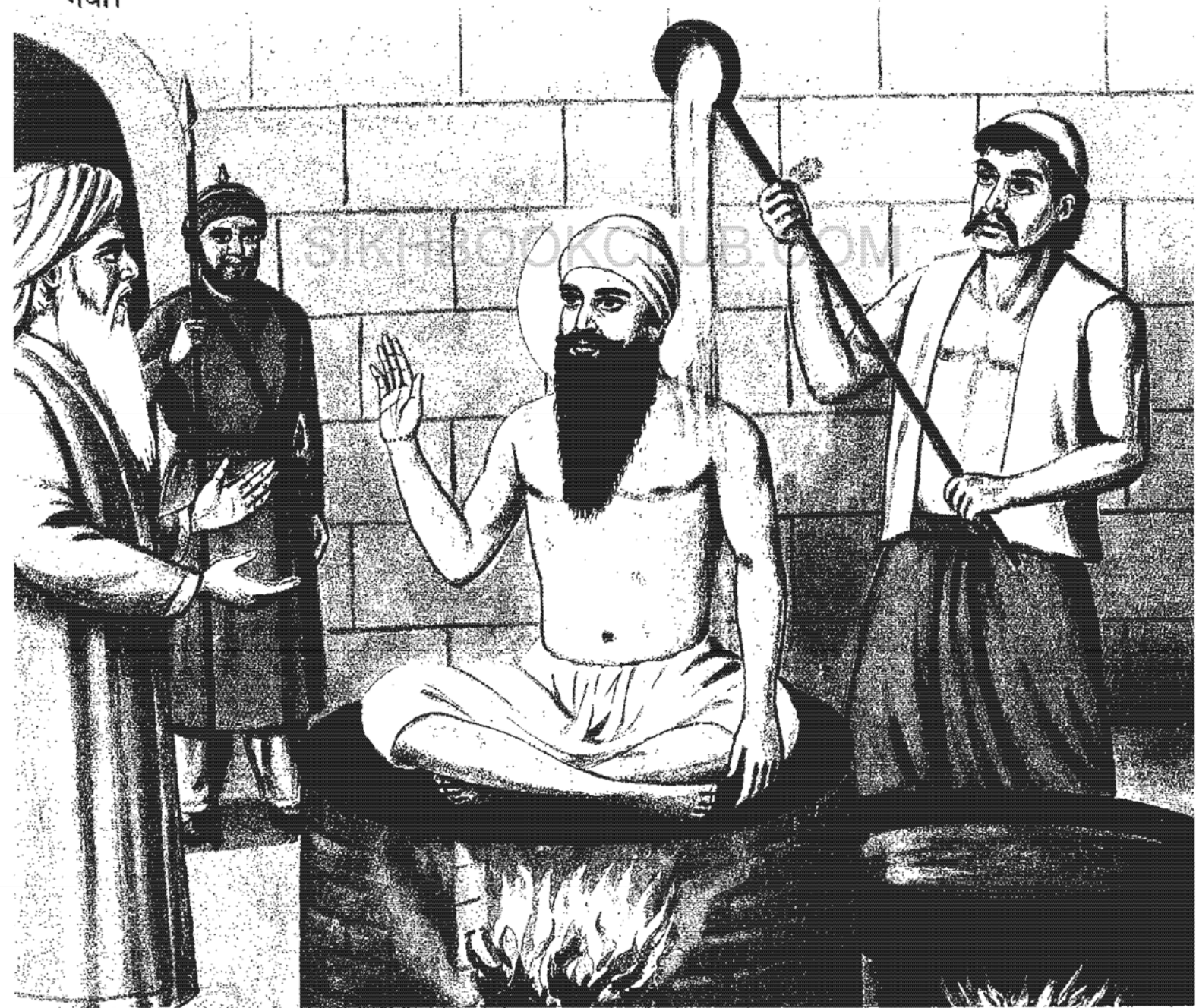
श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब जी

(गुरु) हरिगोबिंद साहिब का जन्म 9 जून 1595 ई. को अमृतसर से 4 मील दूर गांव वडाली में हुआ। कुछ समय वडाली ठहर कर गुरु अर्जुन देव जी फिर अपने परिवार को अमृतसर ले गए। अमृतसर जा कर श्री हरिगोबिंद की विद्या एवं प्रशिक्षण का पूर्ण प्रबंध किया गया।

शस्त्र विद्या के साथ-साथ (गुरु) हरिगोबिंद साहिब गुरुवाणी का गहन अध्ययन कर रहे थे। अल्पायु में ही उन्होंने काफी वाणी मौखिक याद कर ली थी।

चंदू, जो दिल्ली में बादशाह का दीवान लगा हुआ था, उसने अपने पुरोहितों को अपनी कन्या के लिए वर ढूंढने हेतु भेजा। (गुरु) हरिगोबिंद साहिब की शोभा देखकर वे मुग्ध हो गए। चन्दू की कन्या का रिश्ता वह (गुरु) हरिगोबिंद से पक्का कर गए। परन्तु चन्दू जब शगुन भेजने लगा तो उसने कहा, "पुरोहित जी! आपने अच्छा नहीं किया, चौबारे की ईंट मोरी में लगा आए हो।" परन्तु जब सिक्खों ने यह सुना तो उन्होंने गुरु जी को सब कुछ बता कर शगुन वापिस लौटा दिया।

गुरुगद्दी के समय जब बाबा बुड्ढा जी ने एक तलवार पहनाई तो गलत तरफ पड़ गई। जब बाबा बुड्ढा जी उसे उतारने लगे तो गुरु जी ने कहा, दूसरी तलवार लाओ। दूसरी तलवार उन्होंने दूसरी तरफ पहन ली। उन्होंने कहा कि वह अब दो तलवारें ही पहना करेंगे। एक तलवार मीरी की है और दूसरी पीरी की।
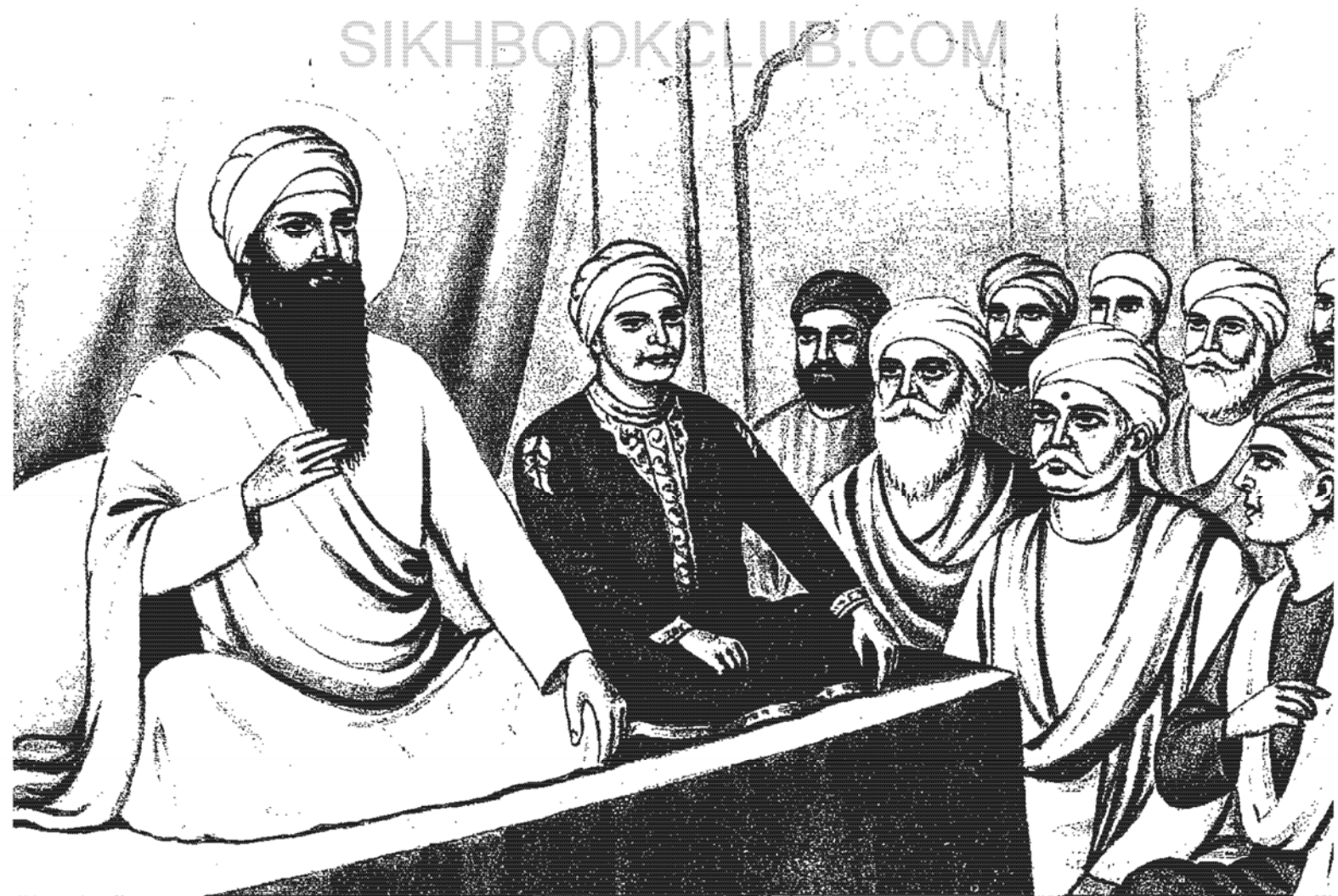
उन्होंने दसतार भी राजाओं-महाराजाओं की तरह सजाई और कलगी लगाई। गुरु जी का तेज़ उस समय सूर्य के समान चमकता था। गुरुगद्दी पर बैठने के पश्चात गुरु जी ने फुरमाया, "आज के बाद मेरे पास उपहार अच्छा शस्त्र एवं अच्छा घोड़ा होगा। सभी सिक्ख शस्त्रधारी बनो। व्यायाम करो, गतका खेलो और जंगलों में जाओ, शिकार खेलो। मुझे आज से सबसे अधिक सिक्ख शूरवीरों की आवश्यकता है।"

गुरु जी का यह फुरमान मान कर सिक्ख उन्हें शस्त्र एवं घोड़े अर्पित करने लगे। सैकड़ों शूरवीर सिक्ख गुरु जी की सेना में भर्ती होने के लिए आने लगे। गुरु जी ने उन्हें स्पष्ट कर दिया कि उन्हें लंगर में से दोनों प्रहर प्रशादा मिलेगा और छः महीने बाद पहनने हेतु नए वस्त्र मिलेंगे। सिक्खों को और क्या चाहिए था? वह दोनों समय कीर्त्तन सुनते थे, दिन के समय शस्त्र चलाने का अभ्यास करते थे, व्यायाम करते थे और आगे से भी सौष्ठव हो रहे थे।

जब सेना की संख्या में वृद्धि हो गई तो गुरु जी ने अमृतसर की रक्षा हेतु एक किला बनाने की योजना बनाई। नगर के पश्चिम की तरफ लौहगढ़ किले का निर्माण आरम्भ कर दिया।

जब जहांगीर को पता लगा कि गुरु हरिगोबिंद जी अपनी सैन्य शक्ति बढ़ा रहे हैं तो उसने गुरु जी को ग्वालियर के किले में कैद कर दिया। साईं मियां मीर नूरजहां को जा मिले। उन दिनों में जहांगीर बहुत बीमार था और बड़े से बड़े वैद्यों के उपचार से भी स्वस्थ नहीं हो रहा था। बादशाह जहांगीर भी मियां मीर को मिलकर बहुत प्रसन्न हुआ और उन्हें कहने लगा, "आप अल्लाह के वली हो, मेरी सेहत हेतु दुआ करो।" साईं मियां मीर ने कहा, "आपने एक ईश्वरीय ज्योति को कष्ट देकर मरवा दिया है और उनके परमात्मा रूपी पुत्र को कैद में रखा हुआ है। जब तक आप उन्हें नहीं छोड़ते, स्वस्थ होने का ख्याल छोड़ दो।"

उसने उसी समय एक शाही फुरमान जारी कर दिया कि गुरु हरिगोबिंद साहिब को रिहा कर दिया जाए। गुरु जी ने वजीर खां को कहा कि वह तब तक कारागार में से बाहर नहीं जाएंगे जब तक शेष सारे कैदियों को रिहा नहीं किया जाता। जहांगीर ने पुनः आदेश भेजा कि जितने राजे उनका आंचल पकड़ कर बाहर निकल सकते हैं, वे रिहा कर दिए जाएंगे। यह सुनकर गुरु जी ने 52 शृंखलाओं वाली एक पोशाक तैयार करवाई और सभी राजे अपने साथ रिहा करवा लिए।

जहांगीर बादशाह अब चाहता था कि गुरु जी के साथ मधुर संबंध बनाए जाएं। इसलिए उसने गुरु साहिब को कुछ दिन अपने पास ठहरने हेतु विनती की। अब जहांगीर व गुरु साहिब इकट्ठे शिकार खेलने जाया करते थे। एक दिन एक बड़ा भयानक शेर उनके सामने आ गया। जहांगीर ने कहा कि कोई ऐसा शूरवीर है जो इस शेर का सामना करे। परन्तु जहांगीर का कोई भी शूरवीर साहस न कर सका। तब गुरु जी कूद कर शेर के सामने हो गए। जब शेर ने गरज कर उन पर वार किया तो उन्होंने अपनी ढाल उसके मुंह पर ऐसी मारी कि शेर लुढ़कता हुआ नीचे गिर गया। फिर उन्होंने तलवार के एक वार से शेर के दो टुकड़े कर दिए। जहांगीर यह देखकर चकित हो गया। ऐसा शूरवीर उसने आज तक देखा नहीं था।

शिकार खेलने के साथ-साथ कई बार तीरंदाजी के मुकाबले भी होते। यमुना नदी में तुम्बे फैंके जाते और उन तुम्बों को तीर मारे जाते। गुरु जी का प्रत्येक तीर निशाने पर लगता। बादशाह उनकी विलक्षण निशानेबाजी देखकर बहुत हैरान हुआ।

गुरु हरिगोबिंद साहिब ने शाही सेना से चार युद्ध लड़े। प्रथम युद्ध पिपली साहिब के समीप हुआ। मुगल सेना फिर किले की ओर बढ़ी और किले को घेर लिया गया। गुरु जी भी अपने परिवार को झब्बाल छोड़कर किले में आ गए थे। उन्होंने पत्थर तोप चलाने का आदेश दिया।

अगले दिन प्रातः होते ही युद्ध का बिगुल बज गया। पैंदे खां ने सिक्खों की सेना की कमान संभाली और किले से बाहर निकल कर मुगलों को पांवों तले रौंद कर मारने लगा। जो भी उसके सामने आता था, उसके एक वार से ही समाप्त हो जाता था। फिर पैंदे खां ने मुखलिस खां के साथी दीदार अली को ललकारा। दीदार अली भी मुगल सेना के चुनिंदा शूरवीरों में गिना जाता था। जब वह पैंदे खां के सम्मुख हुआ तो पहले वार से ही मारा गया। मुखलिस खां ने फिर गुरु जी को द्वंद्व-युद्ध हेतु ललकारा। गुरु जी ने उसकी चुनौती को स्वीकार किया और शेष सभी शूरवीर पीछे हट गए। गुरु जी ने पहला तीर चलाया जो मुखलिस खां के घोड़े के बीच में से गुजर गया। मुखलिस खां नीचे गिर गया। गुरु जी भी अपने घोड़े से उतर कर मुखलिस खां के सामने हो गए। मुखलिस खां ने बड़े क्रोध से तीन वार किए, जिन्हें गुरु जी ने अपनी ढाल पर रोक लिया। फिर उन्होंने स्वयं ऐसा वार किया कि तलवार मुखलिस खां की ढाल को चीरती हुई उसके शरीर के भी दो टुकड़े कर गई। मुखलिस खां के गिर जाने के बाद मुगल सेना वहां से भाग गई।

जब जहांगीर ने चंदू को गुरु हरिगोबिंद साहिब के सुपुर्द किया था तो उसकी सम्पत्ति भी जब्त कर ली थी। गुरु जी ने उसके गांव रूहेला को पुनः आबाद करके उसका नाम श्री हरिगोबिंदपुर रखा। माता कौलां के अन्तिम संस्कार के पश्चात जब गुरु जी करतारपुर से श्री हरिगोबिंदपुर आए तो उनकी भगवान दास घेरड़ से टक्कर हो गई।

भगवान दास श्री हरिगोबिंदपुर का भूमिकर वसूल करके जालंधर के सूबे के पास जमा करवाया करता था। एक दिन वह कुछ बदमाश अपने साथ लेकर आया ताकि गुरु जी को श्री हरिगोबिंदपुर से निकाल दिया जाए। जब सिक्खों को इसका पता चला तो उन्होंने उसके दो टुकड़े करके ब्यास दरिया में फैंक दिया।

जब उसके पुत्र रत्न चंद को पता चला तो वह जालंधर के हाकिम अब्दुल्ला खां के पास जा कर पेश हुआ। वह पहले ही गुरु जी के विरुद्ध था, इसलिए वह चार हज़ार सेना लेकर श्री हरिगोबिंदपुर पर आक्रमण करने के लिए पहुंच गया। सेना के निकट पहुंचने पर सिक्खों ने तीरों की ऐसी वर्षा की कि शाही सेना जान बचाने हेतु इधर-उधर भागने लगी। अगले दिन अब्दुल्ला खां ने अपने दोनों पुत्रों को सेना देकर आगे भेजा और कहा, "तीरों की परवाह न करते हुए सिक्खों के मोर्चे पर कब्ज़ा कर लो।" परन्तु मोर्चे पर कब्ज़ा करने से पहले ही उसके दोनों पुत्र नबी बख्श तथा करीम बख्श मारे गए। जब अब्दुल्ले को यह पता चला कि उसके दोनों पुत्र मारे गए हैं तो वह सिक्खों की सेना को चीरता हुआ गुरु जी के समक्ष आ खड़ा हुआ।

जब अब्दुल्ला वार करता-करता थक गया तो गुरु जी ने खण्डे से एक ऐसा वार किया कि
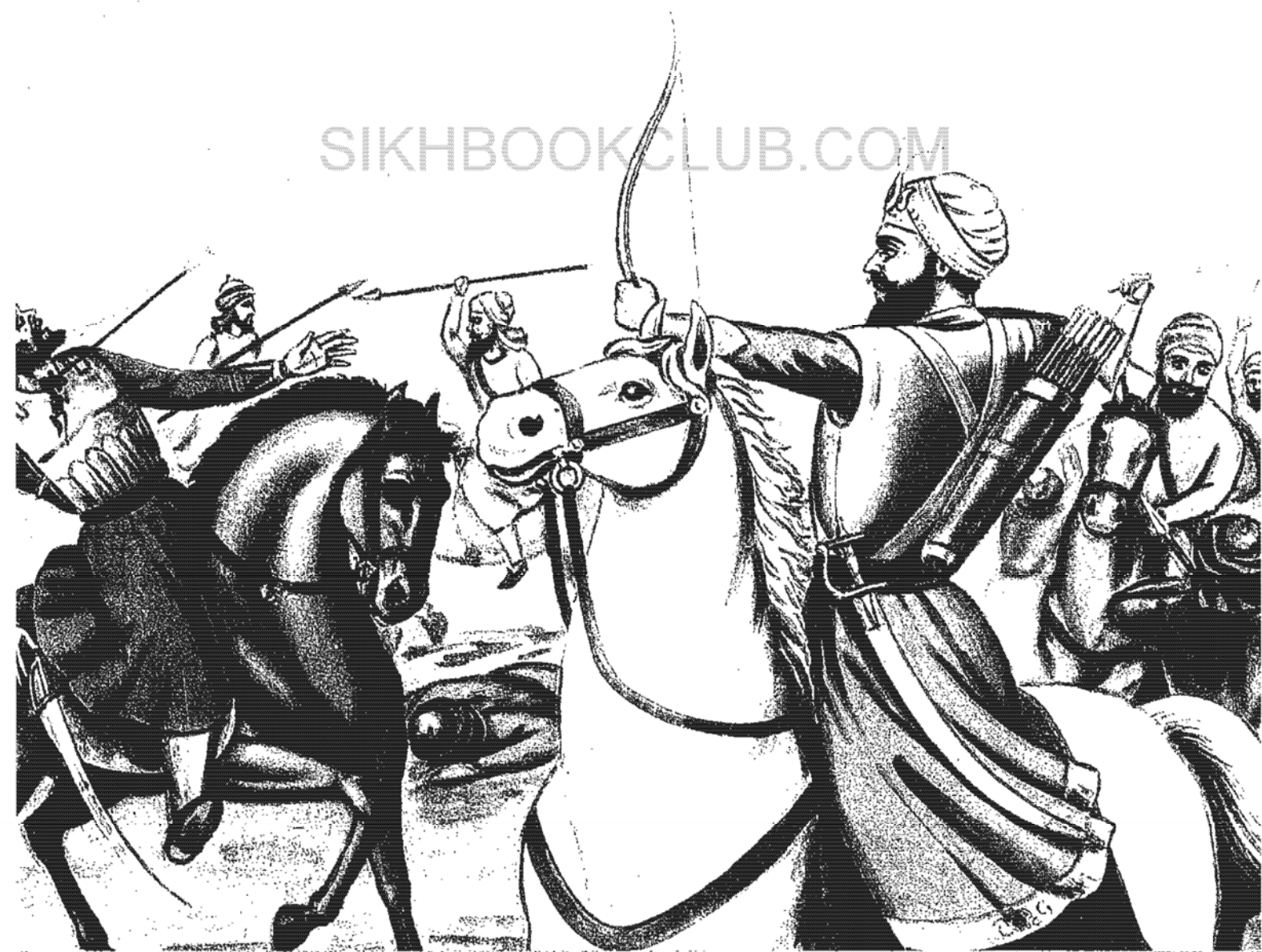
अब्दुल्ला खां दो टुकड़े होकर धरती पर सदा की नींद सो गया। इस तरह गुरु जी ने दूसरा युद्ध भी जीत लिया।

एक बार श्री हरिगोबिंद जी अपने पुत्रों को लेकर बाबा श्री चंद को मिलने गए। बाबा श्री चन्द जी गुरु हरिगोबिंद साहिब को मिलकर अत्यंत प्रसन्न हुए। गुरु जी अपने चारों पुत्रों सहित बाबा जी के पास विराज गए। गुरु जी बाबा जी को युद्धों का वृत्तांत सुनाते रहे। लेकिन बाबा श्री चंद का ध्यान बाबा गुरदित्ता की ओर था। उनकी सूरत उन्हें बिल्कुल गुरु नानक जी जैसी लगी। फिर बाबा श्री चंद जी कहने लगे, "आपके कितने साहिबज़ादे हैं?" गुरु जी ने जब उन्हें बताया कि चार हैं तो बाबा जी कहने लगे, "इन चारों में से कोई बाबे का भी है?" गुरु जी ने कहा, चारों ही बाबा जी के हैं, इन में से कोई भी ले लो।"

फिर बाबा श्री चंद जी गुरदित्ता का हाथ पकड़ कर कहने लगे, "यह आपका भी टिक्का है और हमारा भी यही टिक्का है, इसलिए अब यह दीन दुनिया का टिक्का हुआ।" फिर उन्होंने उठकर अपनी सेली टोपी श्री गुरदित्ते को पहना दी।

भाई गुरदास जी अपने अन्तिम समय में गोइंदवाल में ही रह रहे थे। भाई गुरदास जी एक ऐसे व्यक्ति थे, जो गुरु अमरदास के समय से सिक्खी का प्रचार करते आ रहे थे। आपका जन्म

2 कार्तिक, सम्वत् 1612 विक्रमी को अमृतसर के निकट गांव बासरके में हुआ था।

जब भाई गुरदास को अपना अंतिम समय निकट आता अनुभव हुआ तो उन्होंने गुरु हरिगोबिंद साहिब की ओर संदेश भेजा। उनका संदेश मिलते ही गुरु जी सभी कार्य छोड़कर गोइंदवाल पहुंच गए। जब अन्तिम समय गुरु जी को अपने पास देखा तो भाई जी का चेहरा गुलाब की भांति खिल गया। गुरु जी ने सिक्खों को वाणी पढ़ने हेतु कहा और स्वयं भाई जी के पास बैठ गए। भाई गुरदास जी ने फिर एक बार गुरु जी की ओर देखा। गुरु जी ने उन्हें दिलासा दिया कि वह अब आ गए हैं। तब भाई जी कहने लगे, "मेरा अन्तिम समय अब निकट आ गया है। सिक्खों को आदेश करना कि जब मेरे प्राण निकलें तो वाहिगुरु का जाप करें। संस्कार करके मेरा कोई देहुरा तैयार न करें, मेरी अस्थियां व राख ब्यास दरिया में प्रवाहित की जाएं।" कुछ समय बाद भाई गुरदास जी ने प्राण त्याग दिए। भाई गुरदास की अर्थी को एक तरफ कंधा गुरु हरिगोबिंद साहिब एंवं बाबा भाना जी तथा दूसरी ओर भाई जेठा जी एवं भाई बिधी चंद ने दिया।

कीरतपुर में गुरु नानक देव के काल से ही एक फकीर बाबा बूढन शाह रहा करते थे। एक बार जब गुरु नानक देव जी यहां आए तो साईं बूढन शाह ने उनके आगे दूध का कटोरा रखा था। गुरु
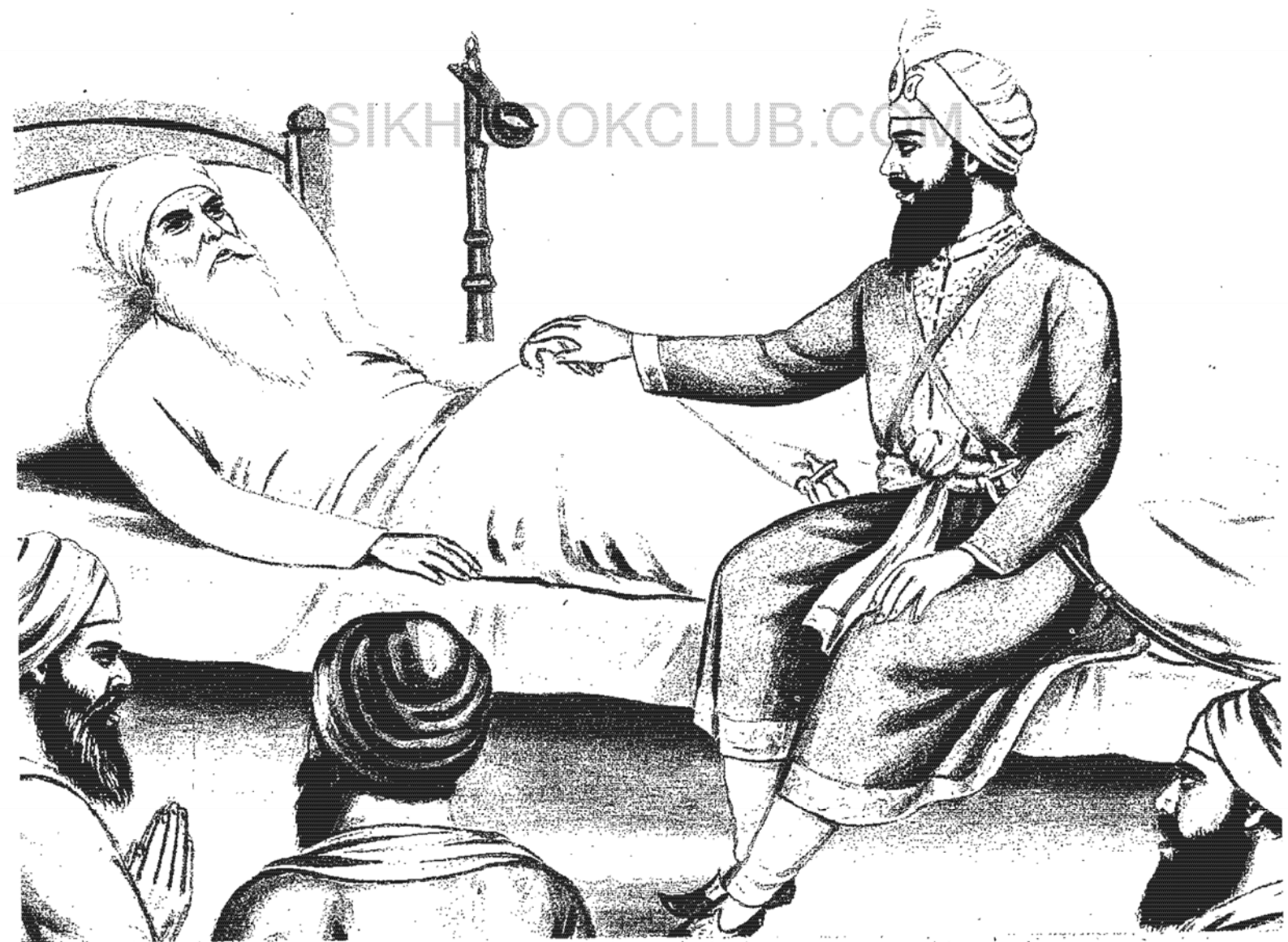
नानक देव जी ने उस समय वचन किया था कि यह हमारी अमानत आपके पास रही, हम छठे स्वरूप में आपका दूध अवश्य पीने आएंगे।

एक दिन गुरु हरिगोबिंद साहिब व बाबा गुरदित्ता जी शिकार खेल कर जब वापिस आए तो वह बाबा बूढन जी के पास गए। गुरु जी ने कहा, "बाबा जी! हमारी अमानत वाला दूध हमें पिलाओ।"

साईं बूढन शाह गुरु नानक देव जी का असली स्वरूप देखकर चकित हो गया। बाबा बूढन जी और गुरु हरिगोबिंद साहिब उठकर खड़े हो गए और कहने लगे, "आओ बाबा जी बैठो।" बाबा बूढन शाह उस समय दो कटोरे दूध के ले आया। एक कटोरा गुरु हरिगोबिंद साहिब ने पीया और एक बाबा गुरदित्ता जी ने पीया। अंततः बाबा बूढन शाह की कामना पूर्ण हुई और वह अपने प्राण त्याग गए। मुसलमान फकीर होने के कारण गुरु जी ने उसे कब्र खुदवा कर दफना दिया। उनकी कब्र आज भी बाबा गुरदित्ता जी के डेरे के समीप है।

बाबा गुरदित्ता जी का जन्म 8 कार्तिक, सम्वत् 1670 विक्रमी गांव डरौली में माता दामोदरी जी के उदर से हुआ। आप गुरु हरिगोबिंद साहिब के ज्येष्ठ पुत्र थे, इसलिए उन्हें टिक्का साहिब भी कहा जाता था। उनका स्वरूप गुरु नानक देव जी से मिलता था।

एक बार जब श्री गुरु हरिगोबिंद जी, श्री गुरदित्ता जी एवं सूरज मल को लेकर बाबा श्री चंद जी को मिलने गांव बाठ गए तो श्री चंद ने श्री गुरदित्ता को अपना बना लिया और उदासीन सम्प्रदाय का अध्यक्ष नियुक्त कर दिया।

एक दिन बाबा गुरदित्ता जी अपने कुछ साथियों सहित जंगल में शिकार खेलने गए। उनके एक साथी के हाथों मृग के भ्रम में एक गाय की मृत्यु हो गई। जब गाय के स्वामी को यह पता लगा तो वह विलाप करने लगा। जब उसे गाय की कीमत देने लगे तो उसने कीमत लेने से इन्कार कर दिया और इस बात पर बल दिया कि उसकी गाय को जीवित किया जाए। बाबा गुरदित्ता जी को दया आ गई और उन्होंने गुरु-मंत्र पढ़कर गाय को जीवित कर दिया।

गाय को जीवित करने की बात गुरु हरिगोबिंद जी के पास भी पहुंच गई। यह सुनकर वह बहुत नाराज़ हुए व उन्होंने बाबा गुरदित्ता जी को अपने पास बुलाया तथा कहने लगे, "तुम अब ईश्वर के शरीक बन गए हो, जन्म व मृत्यु परमात्मा के हाथ में है, तुम मृत को जीवित करने वाले कौन होते हो?"

गुरु साहिब की नाराज़गी बाबा गुरदित्ता से सहन न हुई। वह बाबा बूढन शाह की कब्र के पास गए और समाधि लगाकर बैठ गए। वहां बैठे-बैठे उन्होंने ऐसे श्वास चढ़ाए कि प्रभु में ही समा गए।

श्री गुरु हरिराय साहिब जी

गुरु हरिराय साहिब का जन्म माघ शुदि 13 सम्वत्, 1687 अनुसार 30 जनवरी 1630 ई. को कीरतपुर नगर में हुआ। आप जी के पिता बाबा गुरदित्ता जी थे। जब (गुरु) हरिराय जी ने अवतार धारण किया तो गुरु हरिगोबिंद जी उस समय अमृतसर में थे। जब आप जी को बालक के जन्म का समाचार दिया गया तो आप जी अत्यंत प्रसन्न हुए और प्रसन्नता में कहने लगे, "बड़ी चीज़ का ग्राहक आया है।"

गुरु हरिगोबिंद साहिब कुछ दिनों के पश्चात ही कीरतपुर पहुंच गए। वह इतने प्रसन्न थे कि मार्ग में संगत को कृतार्थ करते और निर्धनों को धन बांटते जा रहे थे।

कीरतपुर पहुंच कर वह पहले बालक के कक्ष में गए। वह काफी समय तक बालक के सुन्दर मुख को देखते रहे। फिर उन्होंने बालक को गोद में उठा लिया और लोरी देते हुए कई वर दिए। उन्होंने कहा, "यह बालक स्वयं हरि का रूप है, इसलिए इसका नाम भी हरिराय ही रखा जाए।"

गुरु हरिगोबिंद साहिब बालक (गुरु) हरिराय साहिब को हमेशा अपने साथ रखते थे, जहां भी

जाते थे, उन्हें साथ लेकर जाते थे। इस तरह (गुरु) हरिराय जी सहज स्वभाव वे सभी गुण ग्रहण कर रहे थे, जो कि गुरु हरिगोबिंद साहिब में थे।

जब गुरु हरिगोबिंद साहिब को यह अनुभव हुआ कि उनका प्रभु में विलीन होने का समय निकट आ रहा है तो आपने समस्त संगत को कीरतपुर पहुंचने हेतु हुक्मनामे भेज दिए। होलियों के दिन थे, संगतें उत्साहपूर्वक कीरतपुर की ओर चल पड़ीं। तीन दिन कीर्त्तन प्रवाह चलता रहा।

चौथे दिन उन्होंने (गुरु) 'हरिराय' जी को अपने पास बुलाया। समस्त संगत ने उनकी ओर बड़े प्रेम से देखा। उनके दिव्य चेहरे की शोभा देखी नहीं जाती थी। फिर गुरु हरिगोबिंद साहिब अपने आसन से उठे और तख्त पर गुरु हरिराय जी को बिठा कर उनके समक्ष पांच पैसे व नारियल रख कर माथा टेका और परिक्रमा की। बाबा बुड्ढा जी के पुत्र बाबा भाना जी ने माथे पर केसर का तिलक लगा कर माथा टेका। फिर समस्त संगत ने गुरु के चरणों पर नतमस्तक किया। बाबा अणी राय, बाबा सूरज मल व (गुरु) तेग बहादुर जी ने भी बड़े सम्मान के साथ माथा टेका।

गुरुगद्दी देते वक्त गुरु हरिगोबिंद साहिब ने गुरु हरिराय जी को यह उपदेश दिया कि वह सदा
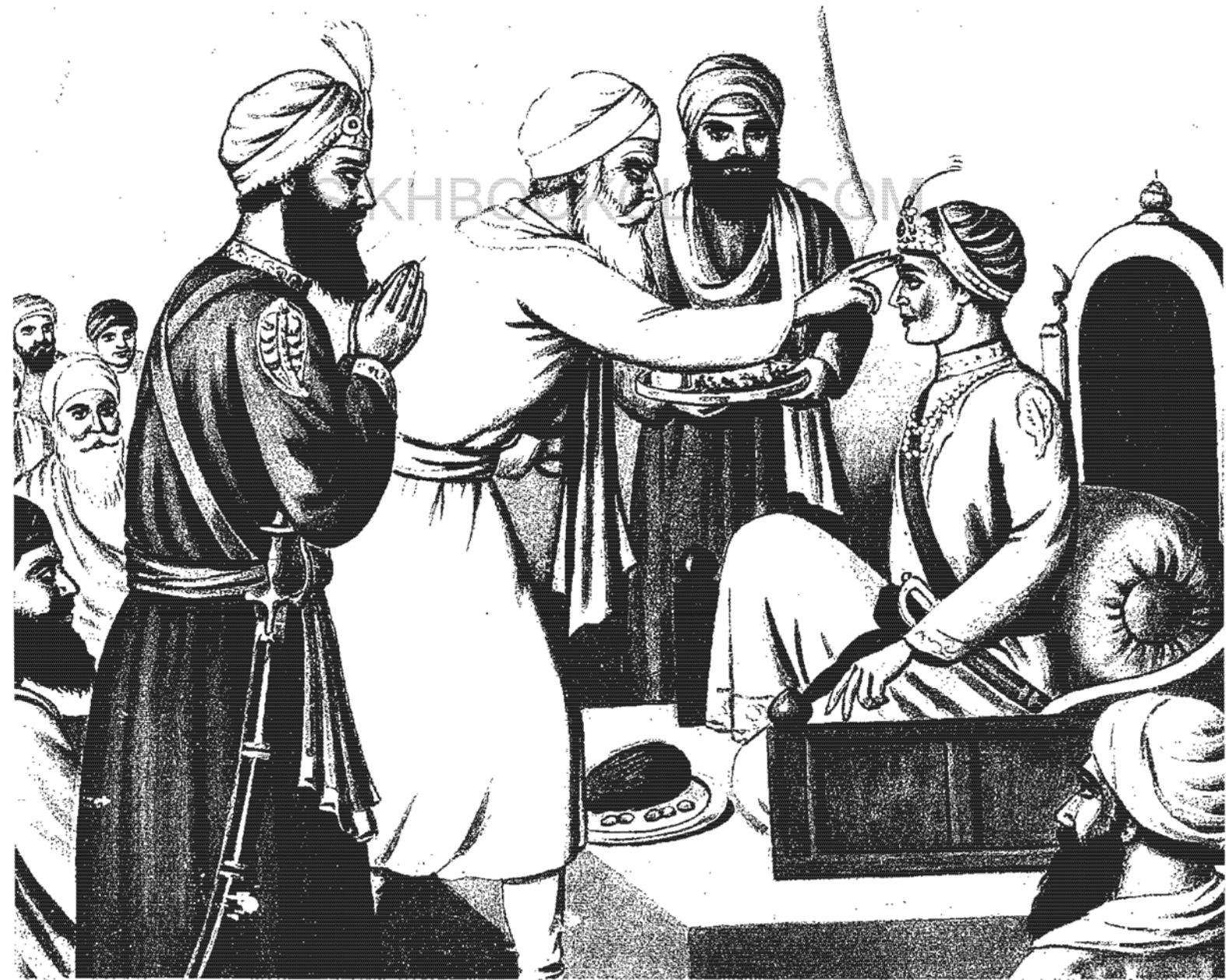
अपने साथ 2200 शस्त्रबद्ध शूरवीर रखें। लेकिन एक बात का ध्यान रखें कि वह अपने जीवन में किसी के साथ युद्ध मत करना। यदि कहीं युद्ध करने का अवसर मिल भी जाए तो इससे गुरेज करें। उन्होंने गुरु हरिराय जी को वर भी दिया कि जो भी उन पर आक्रमण करने आएगा, वह मार्ग में ही मारा जाएगा।

जब दारा शिकोह भाग कर पंजाब की ओर आया तो गुरु हरिराय जी ने उसकी सहायता की। जिसने भी दारा शिकोह की सहायता की थी, उसे ही औरंगजेब ने मरवा दिया था। इसलिए औरंगजेब किसी तरह भी गुरु हरिराय जी को मरवाना चाहता था।

प्रथम आक्रमण के समय उसने ज़ालिम खां को दस हज़ार सेना देकर कीरतपुर आक्रमण करने हेतु भेजा। लेकिन ज़ालिम खां मार्ग में किसी जानवर का कच्चा मांस खाकर ही प्राण त्याग गया। फ़िर कंधार के एक जरनैल दूंदे खां को एक बड़ी सेना देकर भेजा। जब वह करतारपुर पहुंचा तो उसके एक शत्रु ने उसे सोए हुए को मार दिया।

तीसरी बार उसने सहारनपुर के नाहर खां को भेजा। लेकिन सेना में हैज़ा फैल गया, जिससे नाहर खां व आधी से अधिक सेना मर गई। इसके पश्चात किसी जरनैल ने भी गुरु जी पर आक्रमण करने की चेष्टा नहीं की।

श्री गुरु हरिकृष्ण साहिब जी

श्री गुरु हरिकृष्ण साहिब जी 7 जुलाई, सन् 1656 को कीरतपुर में माता कृष्ण कौर के उदर से पैदा हुए। आपके पिता जी श्री गुरु हरिराय साहिब जी थे। बालक के जन्म समय ही गुरु हरिराय जी ने वचन किया था कि यह जो कुछ करेंगे, वह अन्य कोई नहीं कर सकेगा।

आप जी अपने पिता जी गुरु हरिराय साहिब से अत्यंत प्रेम करते थे। जब भी गुरु जी को फुर्सत मिलती तो उनके पास आ बैठते और बड़ी रहस्यमयी बातें पूछते रहते।

एक बार की बात है कि एक सांप घायल हुआ पड़ा था व उसे चींटियां चिपकी थीं। बालगुरु हरिकृष्ण जी कहने लगे, "इस बेचारे ने क्या कसूर किया है, जो इसे चींटियां इतना दुःखी कर रही हैं?" यह सुनकर गुरु हरिराय जी ने कहा, "यह सांप पूर्व जन्म में एक पाखण्डी महंत था, यह भोलेभाले लोगों को मूर्ख बनाकर धन लूटता रहता था। आज इसे जो चींटियां चिपकी हैं, यह वही भोलेभाले लोग हैं, जिन्हें यह लूटता रहा है। आज यह चींटियां बनकर इसका मांस नोच रही हैं। पाखण्डी एवं दुष्ट व्यक्ति का यही हश्र होता है। ऐसा व्यक्ति न तो अपने सेवकों का कल्याण कर सकता है, जिससे वह जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाएं। इस कारण उसके सेवक चींटियों के रूप में जीवित हैं व मुक्ति न मिलने के कारण इस महंत रूपी सांप का मांस नोच रहे हैं।"
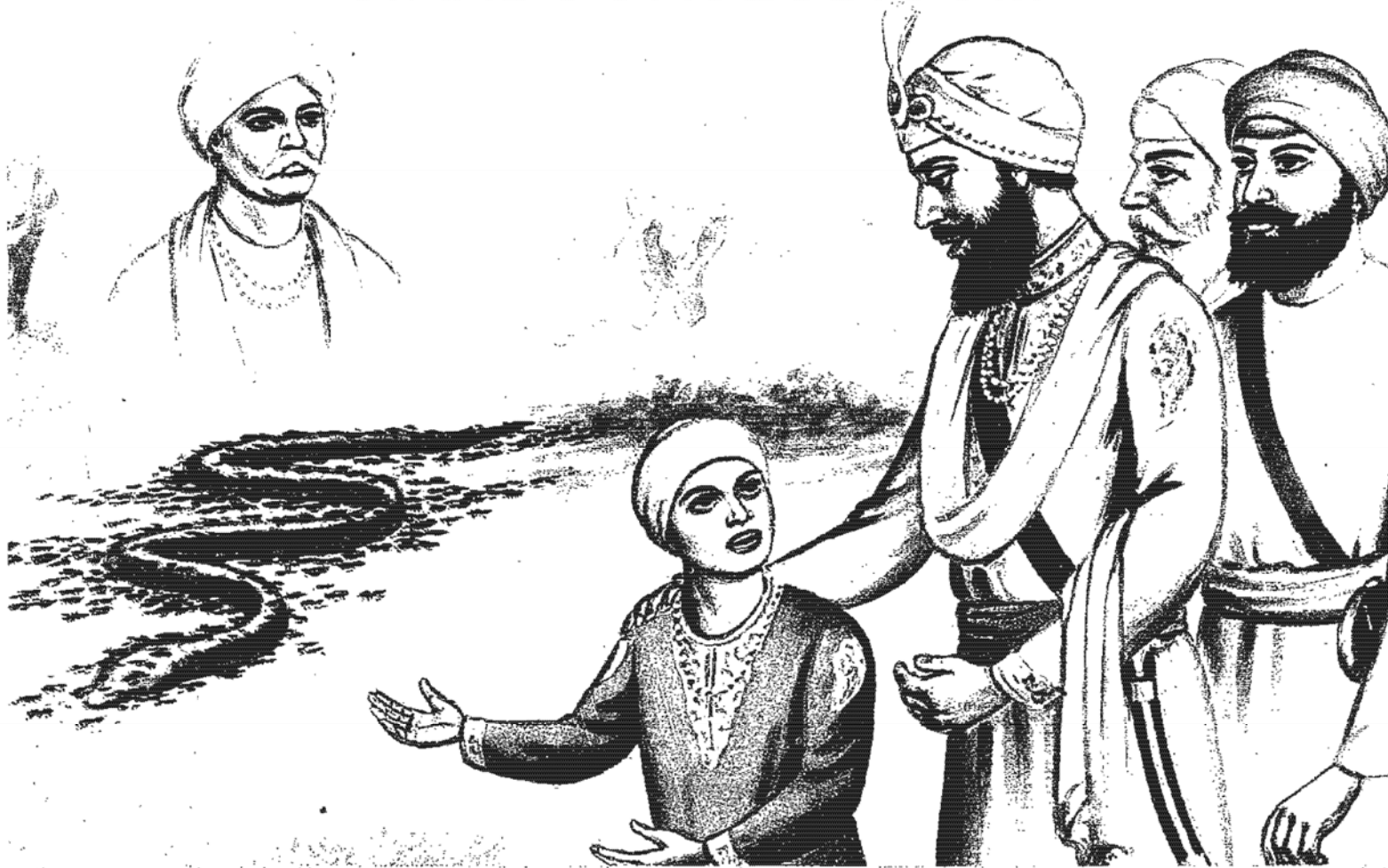
गुरु हरिराय जी ने श्री हरिकृष्ण जी को आठवां गुरु नियुक्त कर दिया। अपने ज्येष्ठ पुत्र रामराय को उन्होंने गद्दी देने से इन्कार कर दिया। जब रामराय को इस बारे पता चला तो उसने औरंगजेब से शिकायत की और यहां तक कह दिया कि मुसलमान धर्म को भी गुरु हरिकृष्ण जी से खतरा है, चूंकि कई मुसलमान पीर-फकीर भी उसकी शरण में आ गए हैं।

यह बातें सुनकर औरंगजेब भड़क गया और उसी समय आदेश दिया कि गुरु जी को पकड़ने हेतु सेना भेजी जाए। लेकिन वहां उपस्थित राजा जय सिंह ने यह सलाह दी कि वह गुरु जी को बड़े सम्मान के साथ लेकर आएं। औरंगजेब ने यह सुनकर जय सिंह की ही जिम्मेदारी लगा दी कि वही गुरु जी को दिल्ली लेकर आएं। दो दिन पश्चात परस राम कीरतपुर पहुंच गया। वह गुरु जी को मिला व उसने उन्हें पहले राजा जय सिंह का मौखिक सन्देश एवं उनके द्वारा भेजी चिट्ठी दी। फिर उन्होंने औरंगजेब वाली चिट्ठी पकड़ाई।

गुरु जी ने कहा, "वह जाने को तैयार हैं, लेकिन वह औरंगजेब के मुंह नहीं लगेंगे। वह किसी से डरते नहीं और न ही किसी बादशाह की खुशामद करना चाहते हैं।"

गुरु जी एक घोड़े पर सवार हो गए और माता कृष्ण कौर एक रथ में सवार हो गईं। उनके पीछे कीर्त्तनी जत्थे कीर्त्तन करते हुए चल पड़े।
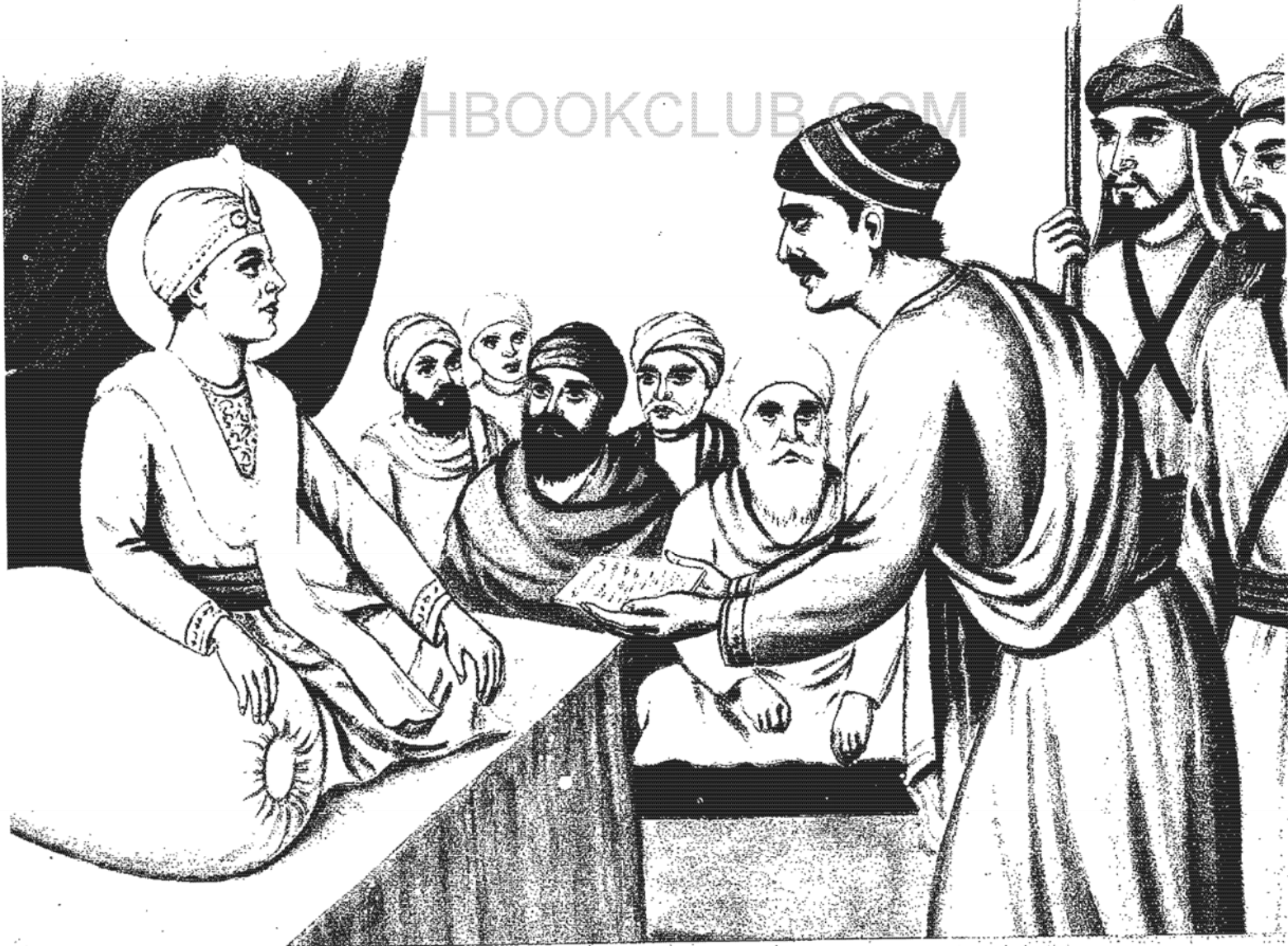
राजा जय सिंह को पता लग गया था कि गुरु जी दिल्ली पहुंच गए हैं। उसने पहले ही तैयारियां की हुई थीं। इसलिए अपने समस्त अहलकारों एवं गुरु-घर के श्रद्धालुओं सहित गुरु जी के स्वागत हेतु स्वयं लेने आया।

राजा जय सिंह के नेतृत्व में गुरु जी अपने सिक्खों व माता कृष्ण कौर जी सहित राजा जय सिंह के बंगले में जा ठहरे। गुरु जी के एक दो दिन विश्राम करने के पश्चात राजा जय सिंह ने कहा, "महाराज! शहंशाह औरंगजेब आपके दर्शन करना चाहते हैं, आप जी उन्हें मिलना कहां योग्य समझते हैं?" गुरु जी ने स्पष्ट जवाब दे दिया कि वह औरंगजेब को किसी हालत में मिलना नहीं चाहते। न वह उसके दरबार जाना चाहते हैं और न ही उनके बंगले में भी उसे मिलना चाहते हैं। राजा जय सिंह एवं उसके दरबारी बालगुरु की ऐसी दृढ़ता को देख कर चकित हो गए।

गुरु जी के दर्शन करने हेतु औरंगजेब ने एक योजना बनाई। उसने राजा जय सिंह को अपने पास बुलाया और कहा, "गुरु हरिकृष्ण जी ने हमें मिलने एवं दर्शन देने से इन्कार कर दिया है। हम देखना चाहते हैं कि उसमें कितनी समझ है, वह वेष बदलने पर भी इन्सान को पहचान सकते हैं अथवा नहीं। इसलिए आप इस तरह करें कि अपनी रानी को घटिया वस्त्र पहना दें और अन्य दासियों एवं रानियों को सुन्दर वस्त्र पहना दें। एक दासी को महारानी वाले वस्त्र पहना कर सबसे सुन्दर बना दो, जिसे देखकर हर कोई समझे कि वह ही महारानी है। यदि वह बालक गुरु असली

रानी को पहचान गया तो मैं समझूंगा वह अन्तर्यामी है। यदि वह न पहचान सका तो उसकी महिमा भी कम होगी और मैं भी वेष बदल कर दर्शन कर आऊंगा।" बादशाह के हुक्म का पालन करने हेतु राजा जय सिंह ने अपने बंगले में पहुंच कर अपनी महारानी को सब कुछ समझा दिया।

जब राजा जय सिंह की यह सब कुछ देखकर संतुष्टि हुई तो वह गुरु हरिकृष्ण जी के पास गया और प्रार्थना की कि वह उनके निजी महल में चरण डालने का कष्ट करें, चूंकि उनकी पटरानी उनके दर्शनों हेतु उत्सुक है।

गुरु जी ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और अकेले ही रनिवास में गए। समस्त रानियों ने उन्हें बड़े ध्यान से देखा और फिर राजा जय सिंह की असली रानी जिसने दासी का वेष धारण किया हुआ था, के समक्ष जाकर खड़े हुए। उन्होंने रानी को बड़े ध्यान से देखा और फिर बोले, "रानी जी, आपको यह आडम्बर करने की क्या आवश्यकता थी? ऐसे आडम्बरों का फल कोई भला नहीं होता। हम तो गुरु-घर के फकीर हैं, हमारे साथ ऐसे कपट करने शोभा नहीं देते।"

दिल्ली में चेचक का रोग फैल गया। गुरु हरिकृष्ण जी रोगियों की सेवा में लग गए और फिर स्वयं भी बीमार हो गए।

निसंदेह गुरु जी को बहुत बुखार हो गया और शरीर पर चेचक के दाने भी निकल आए, लेकिन अपने रोग की उन्होंने जरा भी परवाह न की। वैसे ही वह अपने सिक्ख सेवकों को लेकर दु:खी एवं बीमार लोगों के पास जाते। जिस रोगी को भी वह औषधि देते, वह स्वस्थ हो रहा था, वैसे ही यह रोग गुरु साहिब को और जकड़ रहा था। जब सिक्ख संगतें उनके पास प्रार्थना करती, महाराज! यह क्या इच्छा है तो आप जी मुस्कुरा कर कहते, 'गुरु के प्यारो, हम दिल्ली के समस्त रोगियों का रोग काटने आए हैं, यह रोग तभी उन रोगियों के शरीर को छोड़ेगा, यदि कोई अन्य शरीर इसे अपने ऊपर लेगा, इसलिए मैं समस्त दिल्ली वासियों का रोग अपने शरीर पर ले रहा हूँ। जीवन अपने जीने हेतु नहीं अपितु किसी को जीवन देने में है। मैं प्रभु के आदेशानुसार ही सब कुछ कर रहा हूँ। इसलिए प्रभु की इच्छा को मानो और सहर्ष सब की सेवा करो, मेरी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं।" अपनी माता कृष्ण कौर को चिंतातुर होते देखकर उन्होंने कहा, "अब हम ने प्रभु चरणों में विलीन होने का मन बना लिया है।" फिर संगत में से एक सिक्ख भाई गुरदित्ता जी ने कहा, "आपने तो प्रभु के देश जाने का मन बना लिया, किन्तु हमारी बाजू किसे पकड़ा चले हो?" तब गुरु जी ने हुक्म किया कि एक नारियल, पांच पैसे लेकर आओ। बाबा गुरदित्ता जी नारियल व पांच पैसे एक थाल में रखकर ले आए। गुरु जी ने नारियल एवं पैसों को स्पर्श किया व फिर तीन बार उनके ऊपर गोलाकार रूप में हाथ फेरा। फिर सिर झुकाया और बोले, "गुरु बाबा बकाले।" यह वचन करके आपकी समाधि लग गई।

श्री गुरु तेग बहादुर जी

श्री गुरु तेग बहादुर जी का जन्म वैसाख वदि पंचमी सम्वत् 1678 अनुसार 1 अप्रैल, 1621 ई. को माता नानकी जी के पवित्र उदर से, गुरु के महल अमृतसर में हुआ।

आप श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब जी के सबसे छोटे साहिबज़ादे थे। इतिहासकार लिखते हैं कि जब छठे पातशाह ने नवजात बालक के दर्शन किए तो आप जी ने सिर झुका कर प्रणाम किया। गुरु बिलास पातशाही छठी में लिखा है कि उस समय आपके साथ अन्य संगत भी थी। उन सिक्ख सेवकों में उनका प्रिय गुरसिक्ख बिधी चंद भी था। बिधी चंद चकित हुआ कि गुरु साहिब ने तो किसी के समक्ष सिर नहीं झुकाया था, लेकिन उन्होंने एक बालक को सिर झुका कर वंदना की है। इसलिए पूछने से न रह सका और गुरु जी के समक्ष हाथ जोड़ कर कहने लगा, "मीरी पीरी के स्वामी! सच्चे पातशाह! यह क्या कारण है कि आप जी ने इस बालक को प्रणाम किया है?"

तब गुरु हरिगोबिंद साहिब जी कहने लगे, "बिधी चंद! यह बालक बड़ा होकर निर्धनों की
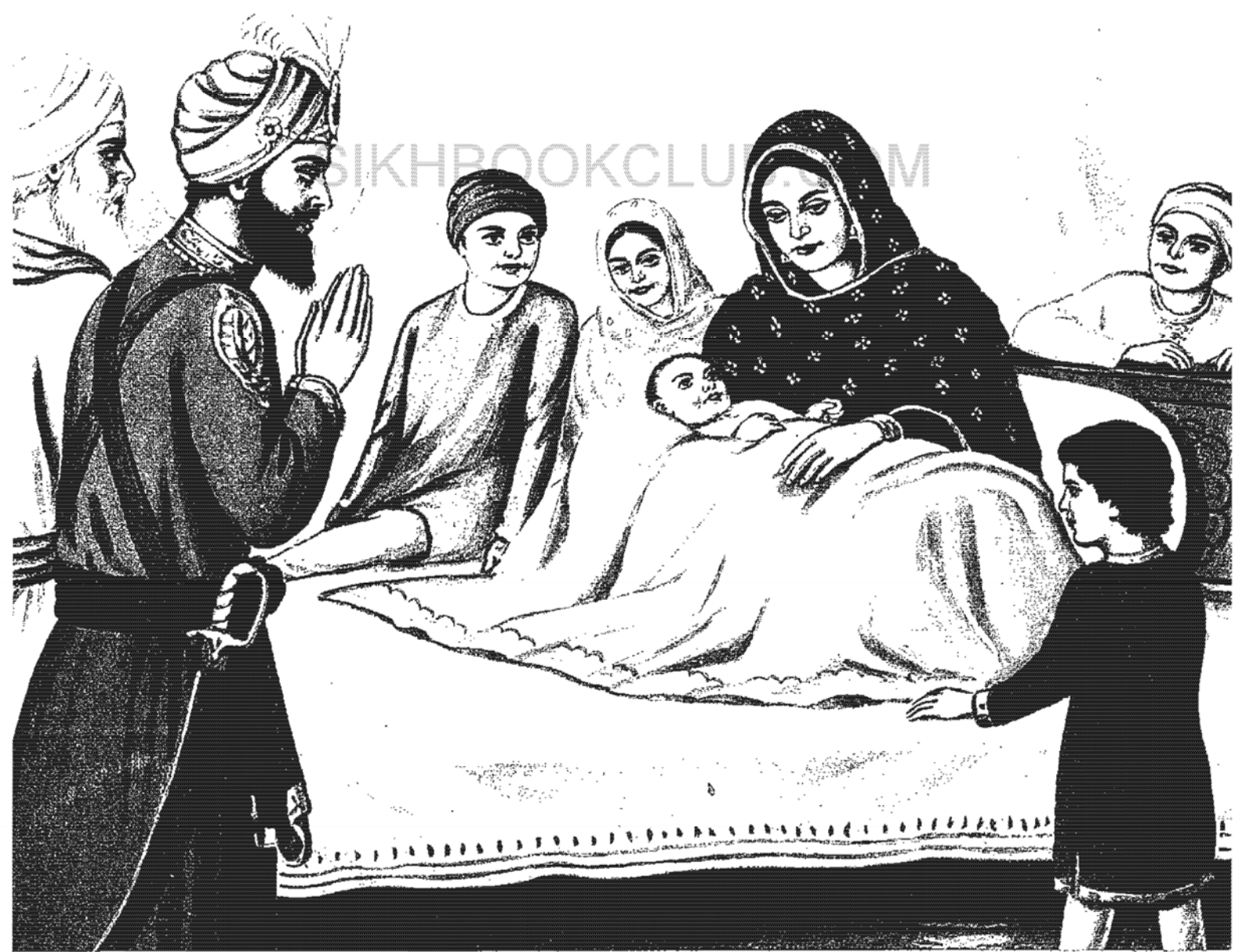
रक्षा करेगा और दुनिया के दु:खों को दूर करेगा। यह निर्भय बालक अत्याचारी तुर्कों की जड़ भी उखाड़ेगा।'' बालक की इस विलक्षण शक्ति को मुख्य रखकर आप जी ने बालक का नाम भी 'तेग बहादुर' रखा।

माता नानकी के उदर से पैदा हुए आपके ज्येष्ठ भ्राता बाबा अटल राय थे। आप दोनों अपने मित्रों के साथ खेला करते थे। एक बार बाबा अटल राय व गुरु तेग बहादुर अपने मित्रों के साथ छुपा-छुपी खेल रहे थे। ढूंढने की जिसकी बारी आती उसे अपनी बारी देनी ही पड़ती थी। एक दिन रात हो गई व अन्धेरा होने के कारण खेल बंद करनी पड़ी। लेकिन ढूंढने की बारी मोहन नामक एक बालक की रह गई। अगले दिन दोनों भाई एवं अन्य बच्चे मोहन के घर गए कि वह आकर अपनी बारी दे।

जब सभी मित्र इकट्ठे होकर उस बालक के घर गए तो आपको पता लगा कि मोहन की सर्पदंश के कारण मृत्यु हो गई है। लेकिन बाबा अटल ने उनके विलाप की परवाह न की और कहने लगे, ''यह जान बूझकर असावधानी से पड़ा है ताकि बारी न देनी पड़े। मैं अभी इसे छड़ी मार कर बताता हूँ कि असावधानी कैसी की जाती है।'' बाबा अटल राय ने छड़ी पकड़ कर जब मोहन को ज़ोर से हिलाया तो वह उठकर बैठ गया। फिर सभी तालियां मार कर हंसने लगे और कहने लगे, ''बच्चे यह बहानेबाजी नहीं चलनी, उठ और अपनी रात वाली बारी दे।'' मोहन उठकर बाहर आ

गया और सारे बच्चे खेलने लग गए।

गुरु जी की पढ़ाई-लिखाई का योग्य प्रबंध किया गया। बाबा बुड्ढा जी से पढ़ाई पूरी करने के पश्चात गुरु जी को भाई गुरदास से और उच्चस्तरीय विद्या हेतु भेज दिया गया। भाई गुरदास जी एक उच्चकोटि के विद्वान थे। आदि गुरु ग्रंथ साहिब के संपादन समय उन्होंने गुरु अर्जुन देव की सहायता की थी। आप एक उच्चकोटि के कवि भी थे। इसलिए उन्होंने बालगुरु तेग बहादुर जी को कविता बारे भी ज्ञान दिया। गुरु साहिब की गुरुवाणी से यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने अन्य रागों में वाणी लिखी जो कि पहले गुरु साहिबान की वाणी में उपलब्ध नहीं थी। आज भी उनकी वाणी समूचे विश्व का मार्गदर्शन करती है।

भाई गुरदास जी से शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात आप जी को राग विद्या सिखाने हेतु एक विद्वान रबाबी को नियुक्त कर दिया गया। राग विद्या गुरुवाणी का एक अभिन्न अंग बन गया था। इसलिए गुरु-घर के सभी साहिबज़ादों को राग विद्या में निपुण बनाया जाता था। गुरु तेग बहादुर जी भी राग विद्या में शीघ्र ही निपुण हो गए। इन पढ़ाइयों के साथ-साथ आप जी को शस्त्र विद्या का बाकायदा प्रशिक्षण दिया जाता था।

जब गुरु हरिगोबिंद साहिब करतारपुर निवास कर रहे थे तो वहां के निवासी एक गुरसिक्ख, भाई लाल चंद का गुरु हरिगोबिंद साहिब से अत्यंत स्नेह हो गया। वह और उसका परिवार गुरु-घर की तन-मन से सेवा करते थे। (गुरु) तेग बहादुर जी भी उस समय जवान हो रहे थे। वह

अपने पिता की तरह अल्पायु में ही लम्बा कद निकाल रहे थे। भाई लाल चंद की भी एक सुपुत्री बीबी गुजरी (गुरु) तेग बहादुर की आयु की थी। जब लाल चंद ने अपनी पुत्री के रिश्ते बारे गुरु हरिगोबिंद साहिब से विनती की तो गुरु जी ने उनकी इस विनती को स्वीकार कर लिया और रिश्ता पक्का हो गया। यहां रहते ही सन् 1632 ई. में (गुरु) तेग बहादुर जी का विवाह हो गया। यह विवाह बड़ी धूमधाम से हुआ और हज़ारों सिक्ख एवं गुरु प्रेमी इस खुशी के अवसर पर पधारे। इस विवाह की खुशी में गुरु साहिब ने उस वर्ष की वैसाखी करतारपुर में ही मनाने का आदेश दिया। संगतें दूर-दूर से करतारपुर में पहुंचने लगीं। उस वर्ष वैसाखी की चहल-पहल देखने योग्य थी। इस अवसर पर सिक्ख सेवक कई प्रकार के उपहार लेकर उपस्थित हुए। सैकड़ों घोड़े एवं हथियार दरबार में अर्पित किए गए। धन का भी कोई अन्त नहीं था।

भट्ट वहियों के अनुसार 11 अगस्त, 1664 ई. को गुरु हरिकृष्ण साहिब के अन्तिम आदेशानुसार एक सिक्ख संगत (गुरु) तेग बहादुर को गुरुयाई तिलक लगाने के लिए बकाले पहुंची।

गुरुयाई की इस घटना के दो महीने पश्चात 9 अक्तूबर, 1664 ई. को एक श्रद्धालु सिक्ख मक्खन शाह लुबाना गुरु साहिब की हजूरी में 500 मोहरें भेंट करने हेतु लाया। सूरत की बंदरगाह पर उसका समुद्री जहाज़ गुरु साहिब की कृपा से डूबने से बच गया था। इसलिए धन्यवाद के रूप में वह यह मोहरें भेंट करने हेतु आया था। लेकिन जब वह बाबा बकाला पहुंचा तो 22 मंजियां देखकर बहुत हैरान हुआ। उसने एक उपाय सोचा और प्रत्येक नकली गुरु के समक्ष दो-दो मोहरें

रखता गया। उसने यह सोचा कि जो असली गुरु होगा, वह स्वयं शेष रकम मांग लेगा। लेकिन किसी ने भी उससे शेष रकम न मांगी। अंततः उसे पता चला कि यहां गुरु हरिगोबिंद साहिब के छोटे साहिबज़ादे बाबा तेग बहादुर जी रहते हैं, वह अपने घर में ही भक्ति करते हैं और संगतों को मिलते हैं। उन्होंने गुरु कहलाने हेतु मंजी नहीं लगाई है। मक्खन शाह लुबाना गुरु-घर भी पधारा और उसने दो मोहरें गुरु जी के समक्ष रखीं। जब वह लौटने लगा तो गुरु साहिब ने शेष मोहरें भी मांगीं। अब मक्खन शाह लुबाना को दृढ़ विश्वास हो गया कि असली गुरु यही हैं। उससे रहा न गया और उसने तुरंत कोठे पर चढ़ कर दामन फेर दिया और बड़ी ऊंची-ऊंची शोर मचाने लगा 'गुरु लाधो रे, गुरु लाधो रे'।

गुरु तेग बहादुर साहिब ने बाबा बकाला में लगभग बीस वर्ष गुजारे थे। गुरु बनने के पश्चात उन्होंने अब अपना दायित्व अनुभव किया और प्रचार हेतु चल पड़े। सर्वप्रथम वह गांवों में से होते हुए अमृतसर पधारे।

दरबार साहिब पहुंच कर गुरु जी ने शेष संगत के साथ पावन सरोवर में स्नान किया और फिर संगतों सहित हरिमन्दिर साहिब माथा टेकने हेतु चल पड़े। जब बाबा हरि जी को यह पता चला कि गुरु तेग बहादुर सैकड़ों सिक्खों के साथ हरिमन्दिर साहिब आ रहे हैं तो वह बहुत डर गया। उसने सोचा कि जैसे इन्होंने बाबा धीरमल को बकाले में से भगा दिया था, वैसे ही उसे भी दरबार साहिब में से भगा देंगे। इसलिए उसने अपने मसंदों को आदेश दिया कि वह दरबार साहिब के द्वार बंद कर दें।
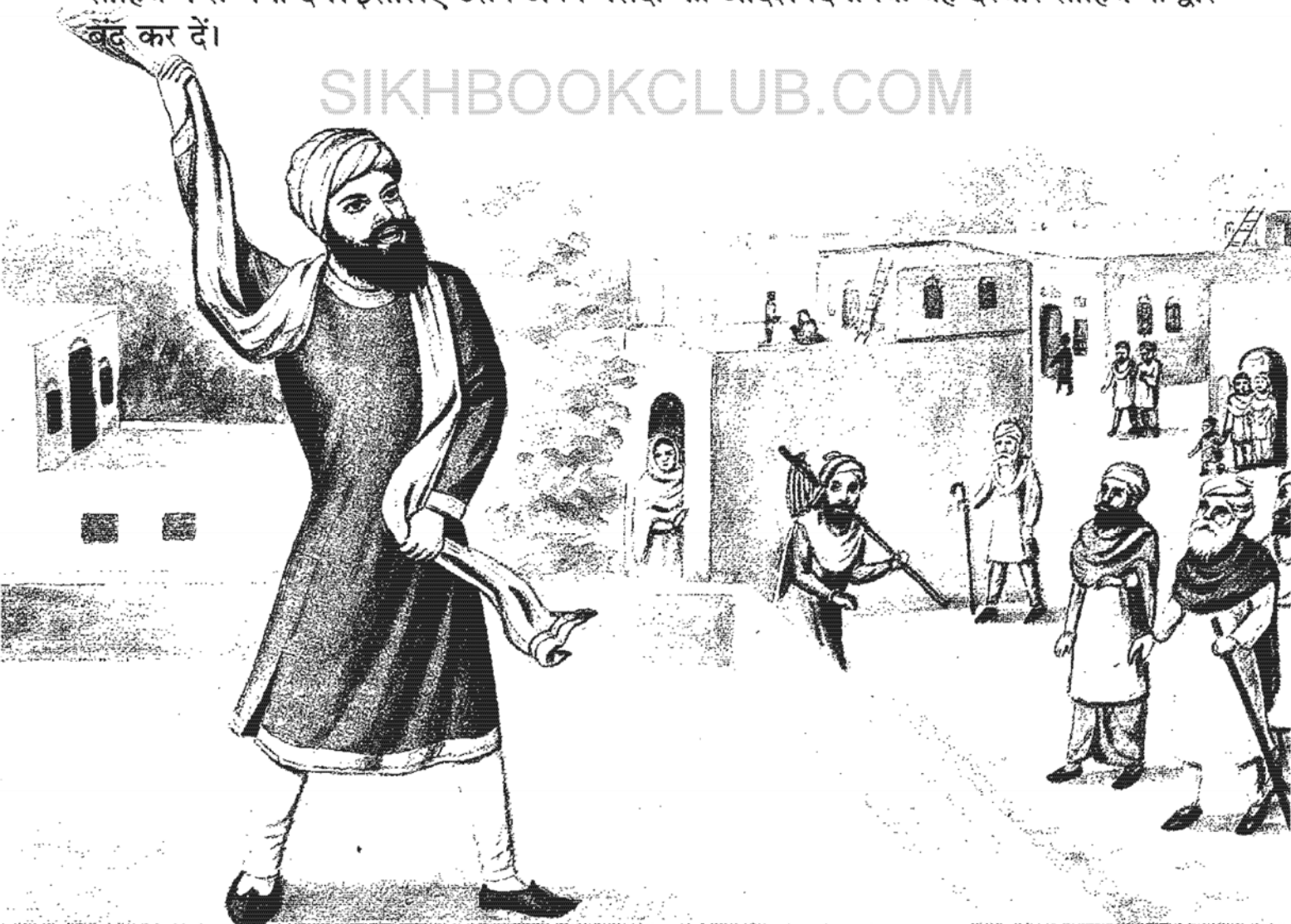
जब सायंकाल हो गई तो गुरु साहिब एक सिक्ख की प्रार्थना पर गांव वल्ले चल पड़े। गांव वल्ला श्री अमृतसर के उत्तर की ओर 4 मील दूर है।

एक माई 'हरो' गुरु घर की बड़ी श्रद्धालु थी। उसने गुरु जी से प्रार्थना की कि वह संगतों सहित उसके कोठे में विराजें। गुरु जी ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और उसके घर चले गए।

जब अमृतसर की माइयों को यह पता चला कि दरबार साहिब के पुजारियों ने हरिमन्दिर साहिब के द्वार बंद कर लिए थे तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ।

नगर की माइयां इकट्ठी होकर वल्ले पहुंचीं। गुरु जी उस समय माई हरो के घर विराजमान थे। माइयां अपने साथ कई प्रकार की सामग्री व उपहार लेकर आईं थीं। उन्होंने गुरु जी को माथा टेका और प्रार्थना की, "महाराज! मसंदों ने बहुत बुरा किया है, इस में अमृतसर वासियों का कोई कसूर नहीं। हमें क्षमा करो और हमारे तुच्छ उपहार स्वीकार करो।" गुरु जी माइयों की इस सेवा पर बहुत प्रसन्न हुए व उन्होंने माइयों को यह वर दिया, "माईयां रब्ब रजाईयां, भगती लाईआं।"

उसके पश्चात माता कृष्ण कौर के निमंत्रण पर आप कीरतपुर पहुंच गए। वहां कुछ समय रहे, फिर गुरु जी ने 500 रुपए देकर माखोवाल का पंटा माता नानकी के नाम करवा लिया। गुरु जी यह भूमि प्राप्त करके संतुष्ट हो गए। वह नहीं चाहते थे कि कीरतपुर में रहकर अपने भाइयों से नित्य का वैर सहन करें।

खरीदे हुए स्थान का सर्वेक्षण करके गुरु जी ने नवीन नगर की नींव 19 जून, 1665 को रखने का निर्णय किया। नींव रखने की रस्म बाबा बुड्ढा जी के पौत्रे बाबा गुरदित्ता जी ने अपने कर कमलों से रखी। नगर का नाम माता नानकी जी के नाम पर 'चक्क नानकी' रखा गया। इस गांव को पहले माखोवाल ही कहते थे। नगर वासियों को भी उपदेश देकर गुरु जी अपने परिवार एवं

अन्य श्रद्धालु सिक्खों सहित मालवे देश की ओर चल पड़े।

गुरु जी गांवों में सिक्खी का नाम-दान देते हुए सैफाबाद पहुंचे। इस स्थान को आजकल बहादुरगढ़ का किला कहते हैं। इस नगर को सैफ़ाबाद इस कारण कहा जाता था चूंकि इसे बसाने वाला नवाब सैफ खां था। वह पीर भीखन शाह का श्रद्धालु बन गया और उनकी शिक्षा के कारण ही वह गुरु नानक देव जी हेतु भी बड़ी श्रद्धा रखता था।

जब गुरु तेग बहादुर जी उसे मिलने हेतु सैफाबाद पहुंचे तो नवाब सैफ खां स्वयं गुरु जी के अभिनंदन हेतु बाहर आया। गुरु जी ने उसके बाग में डेरा लगाया। सैफ खां ने गुरु जी की भरपूर सेवा की।

सैफ खां ने गुरु जी की सवारी हेतु एक सुन्दर घोड़ा भेंट किया। माता गुजरी एवं माता नानकी जी की सवारी के लिए एक सुन्दर रथ बनवाया। गुरु जी उसके पास नौ दिन ठहरे। नवाब सैफ खां हर समय गुरु जी के पास बैठा रहता और उनके साथ विचार-विमर्श करता रहता। भारत के भिन्न-भिन्न नगरों में होते हुए गुरु जी पटना पहुंचे, यहां उन्होंने अपने परिवार को टिका दिया।

अक्तूबर 1666 ई. को गुरु तेग बहादुर जी ढाका की ओर रवाना हो गए। गुरु साहिब के कीर्त्तनिए एवं अन्य सिक्ख आप जी के साथ गए। संगतों को कृतार्थ करते हुए आप ढाका शहर में पहुंच गए।

मसंद बलाकी दास ने गुरु जी हेतु एक सुन्दर पलंग बनवा कर रखा हुआ था। बलाकी दास गुरु जी को अपने घर ले गया और उस पलंग पर ही गुरु जी का आसन करवाया। गुरु जी के दूसरे

साथियों एवं गुरसिक्खों की एक अलग मकान में रिहायश का प्रबंध कर दिया। बलाकी दास की माता ने अपने हाथों से कात कर गुरु जी के लिए एक पोशाक तैयार की हुई थी। गुरु जी उनके घर ठहरे तो माता जी ने उन्हें यह पोशाक अर्पण की। गुरु जी ने बड़े सम्मान से उस पोशाक को पहना और माता जी को नाम-दान दिया। गुरु जी काफी दिन भाई बलाकी दास के घर ठहरे।

एक बार बलाकी दास मसंद की माता जी ने गुरु जी से प्रार्थना की कि उन्होंने गुरु साहिब की एक तस्वीर कलाकार से बनवा कर अपने पास रखनी है। गुरु जी ने उसे समझाया कि गुरु-मंत्र का जाप करने से ही सब कुछ प्राप्त हो जाता है। लेकिन माता जी अपने हठ पर अड़े रहे। बलाकी दास बड़ा प्रभावशाली व्यक्ति था, उसने एक योग्य कलाकार को तस्वीर बनाने हेतु बुलाया। कलाकार आकर तस्वीर बनाने लग गया। वह तस्वीर बनाता गया। गुरु जी के शरीर के समस्त अंग उसने ठीक-ठाक बना लिए, किन्तु जब गुरु जी के चेहरे की ओर देखता तो उसका ब्रश ही न चलता। वह गुरु साहिब के चेहरे का तेज-प्रताप ही न झेल सका। उसने भरसक प्रयास किए लेकिन ब्रश उसका साथ न देता। अंततः गुरु साहिब ने उसके हाथों से ब्रश पकड़ लिया और अपना चेहरा स्वयं बनाया। फिर वह तस्वीर गुरु जी ने अपने हाथों से माता जी को दे दी। माता जी वह तस्वीर प्राप्त करके बहुत प्रसन्न हुईं।

इस तस्वीर के बारे में बताया जाता है कि जहां-जहां गुरु साहिब के ब्रश लगे, उतनी तस्वीर अभी भी उस तरह चमकती है लेकिन शेष भाग बहुत फीका पड़ गया है।

उन दिनों में कामरूप का राजा चक्रध्वज कई वर्षों से दिल्ली सरकार की अधीनता को नहीं मान रहा था। उस राजे को अपने अधीन करने के लिए औरंगजेब ने मिर्जा जय सिंह के पुत्र राजा राम सिंह को कामरूप पर आक्रमण करने का आदेश दिया।

कामरूप का देश जादूगरनियों का गढ़ माना जाता था। जादूगरनियों से अपने बचाव हेतु राजा राम सिंह ने गुरु तेग बहादुर जी की मदद लेनी चाही।

राजे की प्रार्थना स्वीकार करके गुरु जी राजे के अहलकारों के साथ राजा राम सिंह को जा मिले। गुरु जी ने अपना डेरा ब्रह्मपुत्र नदी के तट उस स्थान पर जाकर किया, जहां श्री गुरु नानक देव जी ने अपनी प्रथम यात्रा के समय यहां पहुंच कर कामरूप की जादूगरनियों को सन्मार्ग लगाया था। असम के राजे को जब पता चला कि दिल्ली से शाही सेना उसके देश पर चढ़ाई करके ब्रह्मपुत्र नदी से पार आ उतरी है तो उसने अपनी एक धोबन नामक जादूगरनी मंगवाई। पहले इसने शाही सेना को क्षति पहुंचाने के लिए ब्रह्मपुत्र नदी में बाढ़ ला दी। लेकिन गुरु साहिब ने राजा राम सिंह को पहले ही बता दिया था कि धोबन जादूगरनी दरिया के पानी का बहाव बदल कर सेना को डुबो देगी, इसलिए सेना को पीछे हटा लेना चाहिए।

धोबन जादूगरनी ने तीन आक्रमण किए। दूसरा आक्रमण उसने एक पत्थर की शिला जादुई शक्ति से उड़ाकर गुरु साहिब की ओर मारी। लेकिन गुरु साहिब के संकेत से यह शिला मार्ग में ही गिर गई। धरती में बहुत गहरी व टेढ़ी स्थापित हो गई।

तीसरी बार धोबन जादूगरनी ने एक बड़े पीपल के पेड़ को जड़ सहित उखाड़ कर गुरु जी की ओर फैंका। यह पीपल भी गुरु जी के निकट गिर गया और कोई क्षति न हुई। पीपल भी ज़मीन में स्थापित हो गया और पुनः हरा-भरा हो गया। यह पीपल आजकल भी वहां कायम है। उसके पश्चात गुरु जी
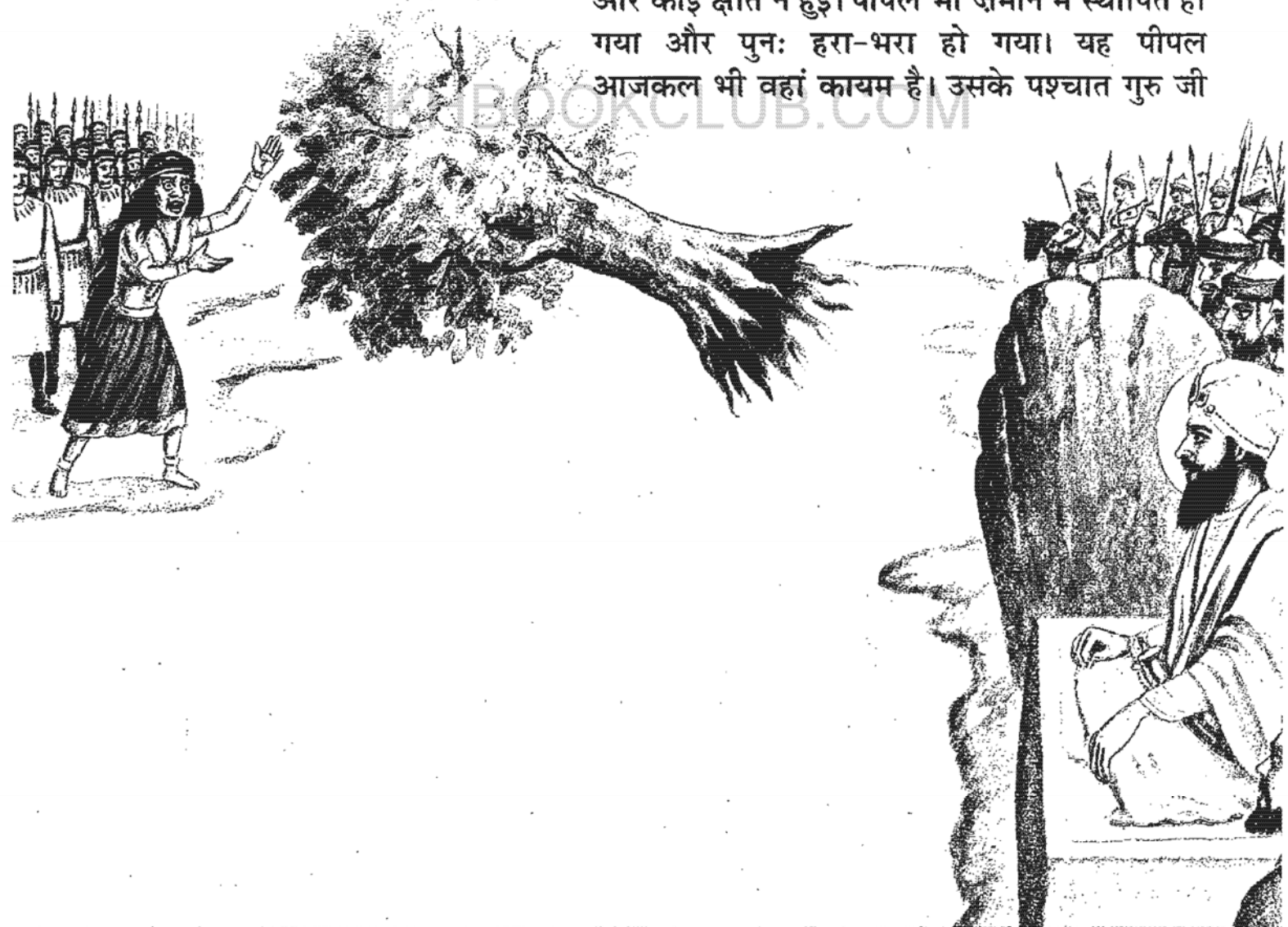
पंजाब आनंदपुर में आ गए।

जब गुरु जी की संतुष्टि हो गई कि रिहायशी मकान, दीवान हाल व अन्य विश्राम घर सुयोग्य बन गए हैं तो आपने एक हुक्मनामा लिख कर परिवार को आनंदपुर साहिब पहुंचने की हिदायत करके एक सिक्ख को पटना साहिब भेज दिया।

कुछ दिनों पश्चात ही गुरु परिवार आनंदपुर जाने हेतु तैयार हो गया। जब सारा परिवार आनंदपुर पहुंचा तो उस समय दरबार लगा हुआ था और 'आसा दी वार' का कीर्त्तन हो रहा था। कीर्त्तन की समाप्ति के बाद गुरु जी स्वयं अपने साहिबज़ादे को लेने आए। उन्होंने बाला प्रीतम को अत्यंत प्रेम किया और दरबार हाल में अपने पास बिठा लिया। शेष परिवार भी कीर्त्तन हाल में ही विराज गया। सारी संगत बाला प्रीतम को देखकर अत्यंत प्रसन्न हुई। जब साहिबज़ादे बाला प्रीतम के आनंदपुर आने के बारे में अन्य संगतों को पता चला तो संगतें शुभ-कामनाएं देने हेतु गुरु-घर पहुंचने लगीं। दूर-दूर के मसंद उपहार लेकर उपस्थित होने लगे। आनंदपुर साहिब में हर तरफ हर्षोल्लास का वातावरण हो गया।

उस समय दिल्ली के तख्त पर बैठा बादशाह औरंगजेब बड़ा कट्टरवादी एवं अत्याचारी था। उसने कश्मीर के सूबे को सख्त हिदायत की कि कश्मीर के पंडितों को मुसलमान धर्म धारण करने हेतु उनके विरुद्ध कड़ी कार्रवाई करे।

उस समय कश्मीरी पंडितों का मुख्य पंडित कृपा राम था। उसने समस्त ब्राह्मणों को यह सलाह दी कि गुरु नानक देव एक ऐसे महापुरुष हुए हैं, जो किसी हाकिम, बांदशाह अथवा जालिम से
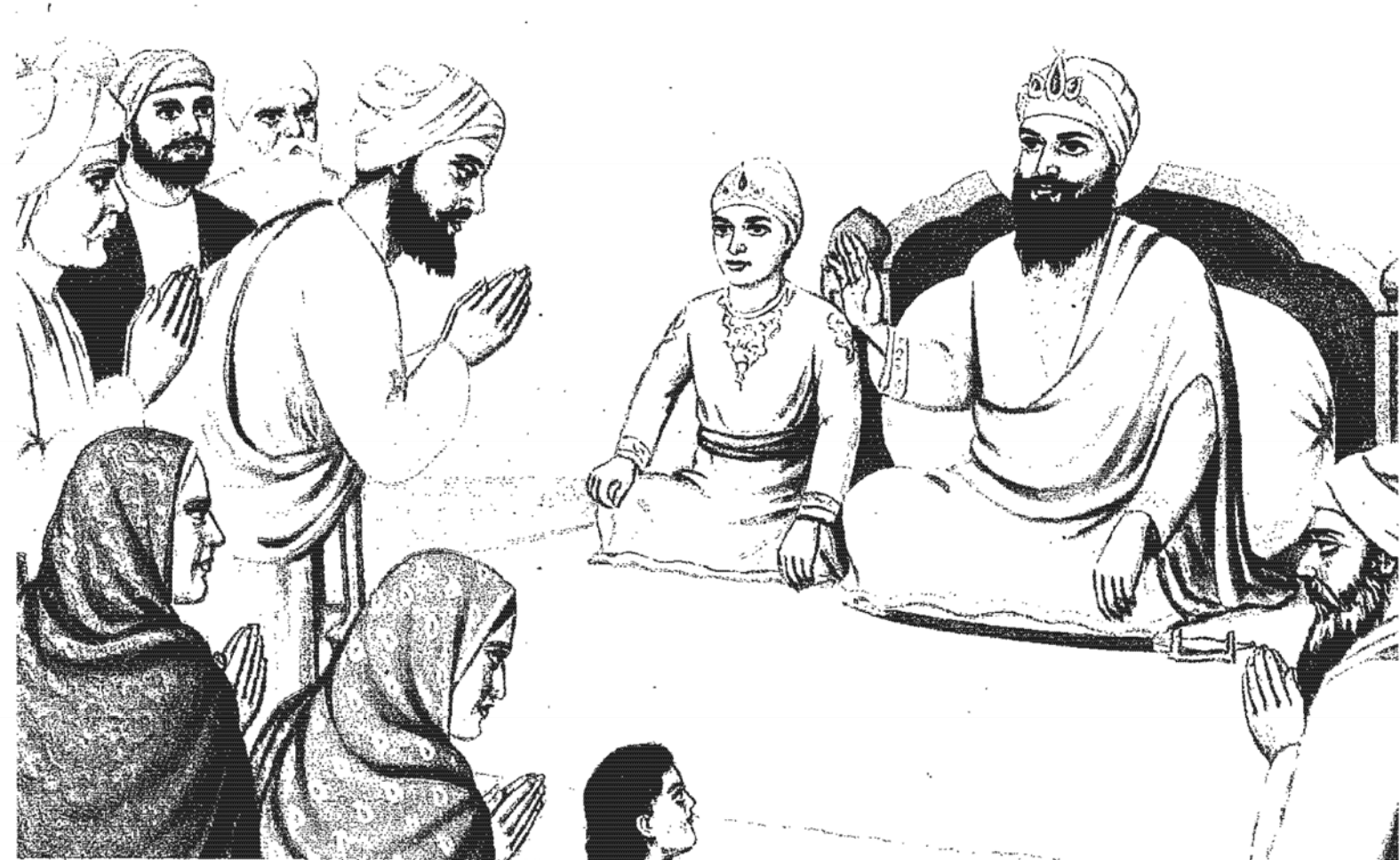
डरते नहीं थे। उनकी गद्दी अभी भी चलती है। गुरु हरिगोबिंद साहिब ने एक छोटी-सी सेना से इन मुसलमान हाकिमों में भगदड़ मचा दी थी। आजकल उनकी गद्दी पर गुरु तेग बहादुर साहिब बैठे हैं। सभी पंडित गुरु के दरबार में उपस्थित हुए।

गुरु जी उस समय अपने दीवान स्थान मंजी साहिब पर विराजमान थे। पंडितों ने उपस्थित होकर प्रार्थना की, "महाराज! ताकत के नशे में चूर जालिम औरंगजेब हमें मुसलमान बनाना चाहता है। हमारी उसके अत्याचार से रक्षा करें।" गुरु जी अपनी इस सोच में ही लीन थे कि साहिबज़ादा गोबिंद राय जी वहां आ पहुंचे। उन्होंने कहा, "पिता जी! क्या सोच रहे हो, यह लोग कौन हैं?"

साहिबज़ादे की बात सुनकर गुरु जी बोले, "बेटा! यह कश्मीर के दुःखी पंडित हैं। औरंगजेब एक अत्याचारी बादशाह है, वह इन्हें बलपूर्वक मुसलमान बनाना चाहता है। इनकी रक्षा हेतु किसी महापुरुष के बलिदान की आवश्यकता है। यदि यह मुसलमान बनना स्वीकार नहीं करेंगे तो इनका वध कर दिया जाएगा।"

अपने पिता से यह बात सुनकर साहिबज़ादे ने कहा, "पिता जी! आप जी से अन्य कौन बड़ा महापुरुष है, जो इनकी रक्षा कर सके। आप जी इनकी किसी तरह भी सहायता करो।"

अपने दिलेर पुत्र की यह बात सुनकर गुरु जी ने पंडितों से कहा, "जाकर अपने सूबे के हाकिम को कह दो, यदि वह हमारे धार्मिक नेता गुरु तेग बहादुर जी को मुसलमान बना लेगा तो वह भी मुसलमान बन जाएंगे। हम तिलक जनेऊ को तो नहीं मानते लेकिन दुखियों की पुकार भी हम बर्दाश्त नहीं कर सकते।" गुरु साहिब के यह वचन सुनकर पंडित सहर्ष चले गए।
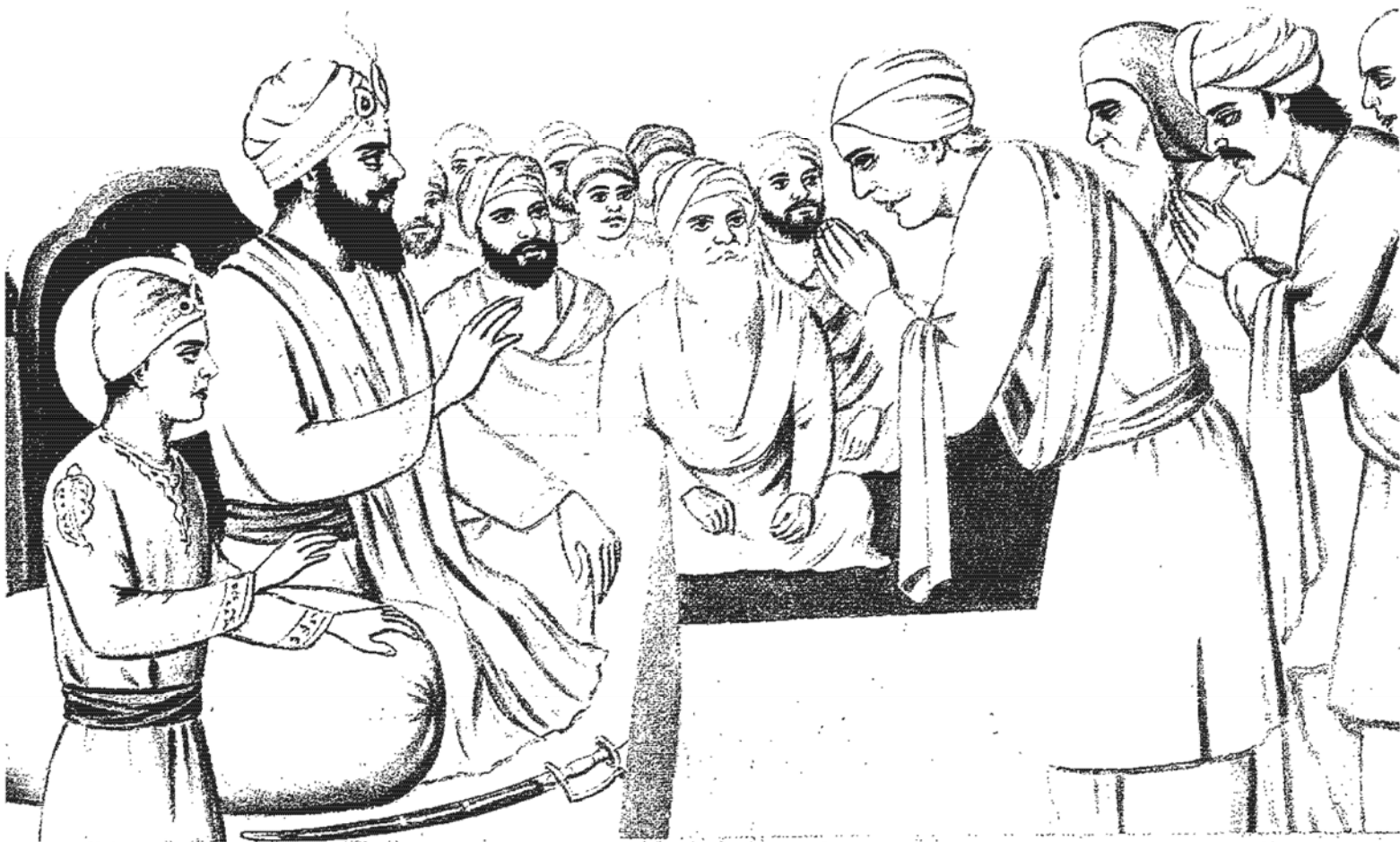
पंडितों के जाने के पश्चात ही गुरु साहिब ने दिल्ली जाने की तैयारी कर ली। उन्होंने अपने साथ केवल छः सिक्ख लिए। गुरुगद्दी उन्होंने (गुरु) गोबिंद राय को सौंप देने के लिए कहा। इस तरह सारे प्रबंध पूरे करके गुरु जी घोड़ों पर सवार होकर अपनी दिव्य यात्रा पर चल पड़े। आप जी प्रचार करते हुए आगरा पहुंचे। उन्होंने यहां एक बड़े अनोखे ढंग से अपनी गिरफ्तारी का कौतुक रचा।

उस बाग में एक लड़का भेड़-बकरियां चरा रहा था। उसे आप जी ने एक बहुमूल्य अंगूठी दी कि इसे गिरवी रखकर हमारे लिए इस दुशाले में दो सेर जलेबियां ले आए। लेकिन जब लड़का दो बहुमूल्य वस्तुएं लेकर हलवाई के पास गया तो हलवाई को सन्देह हो गया कि लड़का अवश्य कोई चोर है। चोरी का माल लेकर वह कोतवाली पुलिस के पास चला गया। जब पुलिस ने लड़के से पूंछा तो उसने गुरु जी का टिकाना बता दिया। इस तरह पुलिस ने गुरु जी को गिरफ्तार कर लिया। गुरु जी को किसी प्रकार का डर अथवा भय नहीं था। दिल्ली पहुंच कर उन्हें इस्लाम कबूल करने हेतु बहुत लालच दिखाए गए, लेकिन गुरु जी अपने निर्णय पर अडिग रहे। उन्हें भयभीत करने हेतु भाई मतीदास को आरे से चीरा गया, भाई दयाले को पानी में उबाला गया व भाई सतीदास को रुई में लपेटकर जीवित जलाया गया। लेकिन गुरु जी पर इसका कोई असर न हुआ। अंत में उन्हें चांदनी चौक में समस्त लोगों के सामने शहीद कर दिया गया।

श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी

गुरु गोबिंद सिंघ जी पटना में 22 दिसम्बर, 1666 ई. को पैदा हुए। उनके पिता जी श्री गुरु तेग बहादुर जी थे और माता का नाम माता गुजरी जी था।

गुरु गोबिंद सिंघ जी 11 नवम्बर, सन् 1675 ई. को आनंदपुर साहिब में गुरुगद्दी पर विराजमान हुए। बाबा बुड्ढा जी के वंश में से बाबा राम कुइर जी ने हीरे-मोतियों से जड़ित दसतार प्रस्तुत करके कलगी सजाई। मोतियों की माला, तीरकमान, कृपाण, घोड़ा, बाज़ व पांच मोहरें प्रस्तुत कीं। उसके पश्चात दूर-दूर से आई संगत ने बहुमूल्य उपहार प्रस्तुत किए। गुरुयाई के सिंघासन पर विराजमान हुए गुरु जी बहुत शोभा दे रहे थे। समस्त संगत में चाव तथा उत्साह था। रागी सिंघ गुरुवाणी का मनोहर कीर्त्तन कर रहे थे।

तदुपरांत गुरु गोबिंद सिंघ जी ने स्वयं गुरु-वंश के समस्त पूर्वजों, बाबा राम कुइर जी, बाबा गुरदित्ता जी एवं श्रद्धालुओं को सिरोपे दिए।

काबुल में एक बड़ा धनवान आदमी रहता था, जिसका नाम दूनी चंद था। जब दूनी चंद ने तंबू बनाना आरम्भ किया तो वहां के दो अन्य सिक्खों ने उसकी सहायता की और तंबू में इतनी बढ़िया चित्रकारी की कि वह बादशाह के तंबू से कई गुणा बेहतर था। यह आकार में इतना बड़ा था कि

इसमें गुरु साहिब का दरबार भी लग सकता था। उल्लेखनीय है कि उस समय दूनी चंद ने इस पर अढ़ाई लाख रुपए खर्च किए। यह तंबू दूनी चंद ने गुरु गोबिंद सिंघ जी को प्रस्तुत किया।

बहुत लम्बा सफर करके राजा रत्न राय अपनी माता व अन्य अहलकारों सहित दीवाली के अवसर पर आनंदपुर साहिब पहुंचा। गुरु जी ने उसे काबुली तंबू में ठहरा दिया। अगले दिन राजा उपहार लेकर दरबार में उपस्थित हुआ। उसने गुरु जी को बड़े प्रेम व श्रद्धा से माथा टेका और गुरु जी ने उसे आशीर्वाद देकर अपने पास बिठा लिया। फिर सेवकों ने उपहार भेंट किए।

सर्वप्रथम एक पंच-कला हथियार प्रस्तुत किया, जिसकी कला घुमाने से बर्छा, गुर्ज, कृपाण, पिस्तौल व बंदूक पांच भिन्न-भिन्न हथियार बन जाते थे। फिर चार पुतलियों वाली चंदन की चौकी मंगवाई गई। इस चौकी की विचित्रता यह थी कि इसकी कला दबाने से चौपड़ की खेल निक़लती थी व पुतलियां खेलने बैठ जाती थीं। एक अन्य कला दबाने से वह बैठने का तख्त बन जाता था। इसके पश्चात अन्य जंगी सामान भेंट किया गया। इसके उपरांत पांच अद्‌भुत व फुर्तीले घोड़े भी प्रस्तुत किए गए, जिनके करतब देखने योग्य थे और एक हाथी भी प्रस्तुत किया, जिसे परशादी हाथी कहते थे। यह हाथी बड़ा समझदार था। यह गुरु साहिब के जूते भी साफ करता था, पहनने हेतु पैरों के आगे भी लाकर रखता था। वह सूंड में पानी भर कर चरण भी धोता था। यदि गुरु साहिब तीर चलाते थे तो यह हाथी वापिस पकड़ कर ले आता था। रात्रिकाल यह मशाल सूंड में पकड़ कर नेतृत्व करता था। इस हाथी के सूंड के भाग से लेकर माथे व कमर ऊपर से होती हुई पूछ के भाग तक एक दूध जैसी सफेद धारी थी।
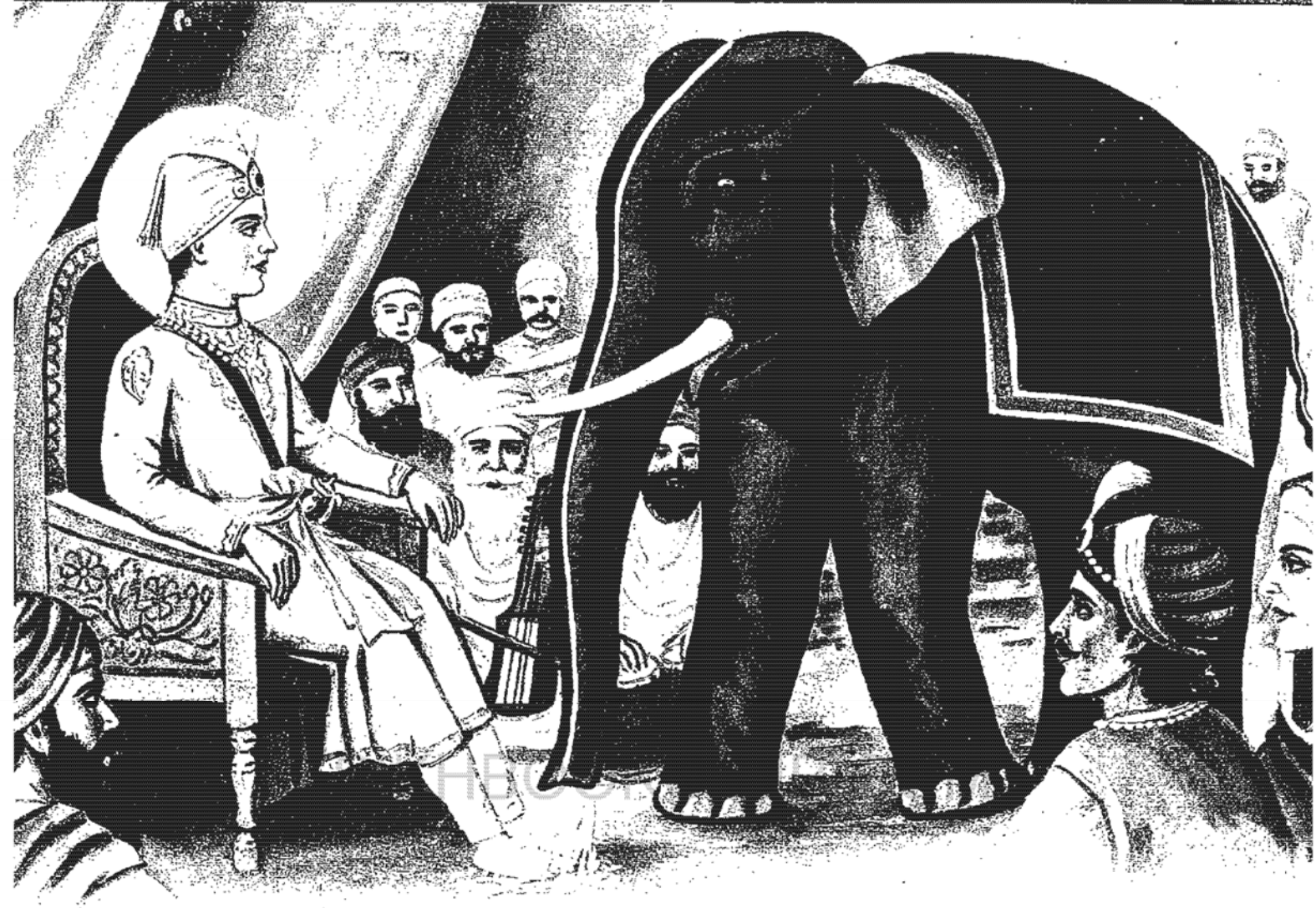
गुरु जी ने यह पक्का मन बना लिया था कि अत्याचार का मुकाबला तलवार से ही करना है। इसलिए उन्होंने बाकायदा सेना रखने का निर्णय कर लिया। पंजाब में से हज़ारों की संख्या में शूरवीर उनकी सेना में शामिल हो रहे थे।

गुरु जी ने यह विचार किया कि सेना हेतु एक योग्य नगारे की आवश्यकता है। नगारे के बिना सेना की शान नहीं बनती। नगारे की ध्वनि दूर-दूर तक शत्रु के दिल हिला देती है और इस पर भिन्न-भिन्न ढंग से लगाई चोट कई प्रकार के संकेत भी समझा देती है।

गुरु जी ने अपने वज़ीर दीवान नंद चंद को एक बड़ा नगारा बनाने का हुक्म दिया। लेकिन मसंद जो व्यर्थ खाने के आदी थे, नगारा बनाने के प्रस्ताव पर बहुत घबराए।

इसलिए उन्होंने मिलकर माता गुजरी जी से प्रार्थना की कि गुरु साहिब को नगारा तैयार करवाने से रोका जाए। माता जी को उन्होंने भलीभांति समझाया कि नगारा बनाने से भयानक लड़ाइयों का सामना करना पड़ सकता है।

माता जी ने मसंदों की बात को मान लिया और गुरु जी के आने पर उन्हें कहा, "हम संत मत का प्रचार कर रहे हैं, संतों-साधुओं को सेना रखने की क्या आवश्यकता है और युद्ध हमने किस लिए करना है?" माता जी की बात सुनकर गुरु जी ने विनती की, "मेरा धर्म व मेरे पूर्वजों का धर्म

अब मुझे ललकार कर कह रहा है कि अब अत्याचार को रोकने हेतु शस्त्र धारण करने ही पड़ने हैं, मुझे सच्चे वाहिगुरु का हुक्म है कि मैंने संतों व गरीबों की मदद करनी है एवं अत्याचारियों का मुंह तोड़ना है। मैंने ऐसे शूरवीरों की कौम पैदा करनी है, जिनके हाथ में तलवार होगी परन्तु मुंह में वाहिगुरु का नाम होगा।"

माता जी गुरु साहिब की दृढ़ता को देखकर चुप रहे और गुरु जी ने एक सुन्दर नगारा तैयार करवाया। इस नगारे का नाम रणजीत नगारा रखा गया।

सिक्ख इतिहास अनुसार गुरु जी के तीन विवाह हुए बताए जाते हैं। उनका पहला विवाह लाहौर निवासी श्री हरिजस राय की पुत्री माता जीतो जी से 23 आषाढ़, सम्वत् 1734 में हुआ। माता जीतो जी एक गुरमुख सिक्ख परिवार की लड़की थी एवं बड़े सुशील स्वभाव की मालिक थी। गुरु जी का दूसरा विवाह श्री राम सरन क्षत्रिय की पुत्री माता सुंदरी से 7 वैसाख, सम्वत् 1741 को हुआ। यह विवाह आनंदपुर साहिब में ही हुआ बताया जाता है।

गुरु जी का तीसरा विवाह ज़िला जेहलम के गांव रुहतास के वासी भाई रामू क्षत्रिय की पुत्री श्री साहिब देवी से 18 वैसाख, सम्वत् 1757 को हुआ।

गुरु गोबिंद सिंघ जी के चार साहिबज़ादे थे। बड़े साहिबज़ादे का नाम बाबा अजीत सिंघ था। आप माता सुंदर कौर जी के उदर से 22 वैसाख, सम्वत् 1743 विक्रमी को पाऊंटा साहिब में पैदा हुए। बताते हैं कि जब गुरु जी भंगानी का युद्ध जीत कर वापिस पाऊंटा साहिब आए थे तो उस समय साहिबज़ादे का जन्म हुआ था। जीत की खुशी में गुरु साहिब ने बालक का नाम अजीत
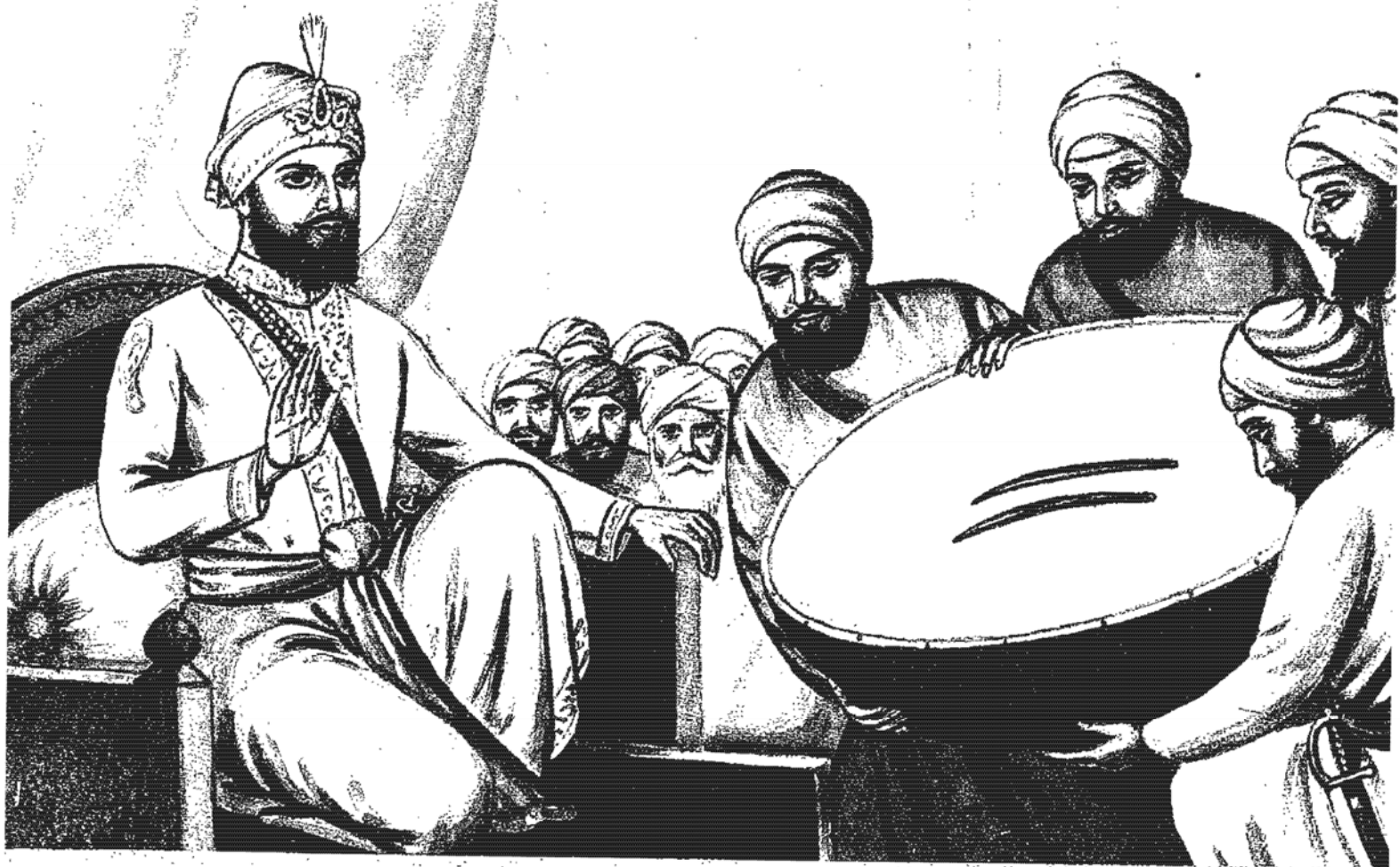
रखा, जो बाद में अमृत पान करके अजीत सिंघ हो गया। बाबा अजीत सिंघ जी एक संत सिपाही के रूप में लड़ते हुए 22 दिसम्बर, 1704 को चमकौर साहिब में शहीद हो गए।

दूसरे साहिबज़ादे बाबा जुझार सिंघ थे। आप माता अजीत कौर के गृह 14 अस्सू, सम्वत् 1747 (1690 ई.) को पैदा हुए। आप भी अपने ज्येष्ठ भ्राता की तरह बड़े शूरवीर व हर प्रकार की शस्त्र विद्या में निपुण थे।

चमकौर साहिब के युद्ध में जब बाबा अजीत सिंघ शत्रु सेना का संहार करते हुए शहीद हो गए तो साहिबज़ादा जुझार सिंघ दशमेश पिता के आगे हाथ जोड़कर खड़े हो गए। वह कहने लगे, "पिता जी, निसंदेह मेरी आयु छोटी है, लेकिन आपका पुत्र होने के कारण और खण्डे का अमृत पान करके मैं शत्रु के किसी भी योद्धा से कम नहीं। मुझे आज्ञा दीजिए, मैं पीछे नहीं हटूंगा, शत्रु को ललकार कर, लताड़ कर, शहीदी जाम पीकर अपने भाई के पास पहुंच जाऊंगा।" वैरियों का संहार करते हुए वह 22 दिसम्बर, 1704 को चमकौर साहिब शहीद हो गए।

तीसरे साहिबज़ादे बाबा जोरावर सिंघ, 12 श्रावण सम्वत् 1753 विक्रमी (1696 ई.) को माता अजीत कौर के उदर से पैदा हुए।

गुरु गोबिंद सिंघ जी के सबसे छोटे पुत्र साहिबज़ादा फतेह सिंघ जी माता अजीत कौर के घर फाल्गुन शुदि 7, सम्वत् 1755 विक्रमी को प्रगट हुए। बाबा फतेह सिंघ को उनके भाई जोरावर सिंघ के साथ ही दिनांक 13 पोष सम्वत् 1761 (27 दिसम्बर सन् 1704) को नींवों में चिनवा कर शहीद कर दिया। उनकी स्मृति में सरहिन्द के निकट गुरुद्वारा फतेहगढ़ साहिब है और आज यही

शहीदी स्थल पंजाब के एक ज़िले की राजधानी बन गया है।

सम्वत् 1756 की वैसाखी से काफी समय पहले गुरु साहिब ने सारे हिन्दुस्तान व अन्य काबुल-कंधार देशों में यह सन्देश भेजे कि इस बार वैसाखी के शुभ अवसर पर समस्त संगतें उत्साहपूर्वक पहुंचे।

वैसाखी वाले दिन एक बहुत बड़ा सुन्दर तंबू लगाया गया। गुरु साहिब के तख्त के पीछे एक छोटा लेकिन कीमती तंबू लगाया गया। सारी सिक्ख संगत दरबार में आकर बैठ रही थी। जब आसा दी वार की समाप्ति हुई तो गुरु जी उस छोटे तंबू में से निकल कर संगत के सम्मुख आए। लेकिन दर्शन करके सारी संगत चकित हो गई। आज गुरु साहिब के मुखमण्डल पर एक अद्भुत ही तेज था। उनके नेत्र ज्वाला की तरह प्रज्वलित हो रहे थे और चेहरे पर कोई अलग ही दिव्य नूर था। उनके हाथ में पकड़ी चण्डी रूपी तलवार दामिनी की तरह चमक रही थी। अपने तख्त पर बैठने की बजाय खड़े होकर तलवार को जोश से हवा में घुमाकर और गरजती आवाज़ में वह बोले, "यह भगौती हमेशा ही शीश मांगती है, आज इसे एक प्रिय सिक्ख के शीश की आवश्यकता है, क्या आप में कोई ऐसा सिक्ख है, जो अपने गुरु को शीश भेंट कर सके?"

गुरु जी तीसरी बार कहने ही वाले थे कि एक सिक्ख उठकर खड़ा हुआ और विनती की, "हे सच्चे पातशाह! मेरा यह शीश आप जी का ही है, मुझे क्षमा करना मैं आप जी के हुक्म का तुरंत पालन नहीं कर सका। मुझे अनंत खुशी होगी यदि मेरा यह शीश आप जी की तलवार की धार का आनंद प्राप्त कर सकेगा।" यह सिक्ख लाहौर निवासी भाई दया राम था।

गुरु साहिब ने बड़े क्रोध में आकर भाई दया राम को बाजु से पकड़ा और उसे तंबू में ले गए,

जो कि उनके तख्त के पीछे लगा हुआ था। समस्त संगत ने तलवार किसी के शीश पर लगती सुनी व एक धड़ के भूमि पर गिरने की ध्वनि आई। फिर उन्होंने लाल रक्त भी तंबू से निकलता बाहर आते देखा। सभी लोग भयभीत हुए बैठे थे कि गुरु साहिब रक्त से रंगी तलवार को लेकर तंबू से बाहर आए और तलवार घुमाते हुए फिर गरज कर बोले, "इस तलवार को एक अन्य शीश की आवश्यकता है। आओ कोई गुरु का सिक्ख इस तलवार की प्यास मिटाओ।"

इस बार दिल्ली से आए भाई धर्म चंद ने अपना शीश भेंट किया। भाई धर्म चंद का भी वही हाल हुआ और गुरु जी जब तीसरी बार रक्त से भीगी तलवार लहराते हुए बाहर आए तो द्वारिका निवासी भाई मोहकम चंद उठा और उसने अपना शीश भेंट करने की प्रार्थना की।

जब चौथी बार गुरु जी रक्त से भीगी तलवार लेकर बाहर आए तो बीदर निवासी भाई साहिब चंद ने गुरु जी की खुशियां प्राप्त करने के लिए अपना शीश भेंट किया।

भाई साहिब चंद का भी वही हाल हुआ और गुरु साहिब फिर और तेज़ में आकर कहने लगे, "इस भगौती की अभी प्यास नहीं मिटी है, इसे एक अन्य सिक्ख के शीश की प्यास है, उठो कोई माँ का लाल व गुरु की खुशियां प्राप्त करो।"

अब गुरु साहिब को दूसरी बार कहने का अवसर नहीं मिल रहा था। तुरंत जगन्नाथ के रहने वाले भाई हिम्मत राय उठ खड़े हुए।

काफी समय पश्चात गुरु जी बाहर आए, लेकिन सभी देखकर विस्माद व आश्चर्य के सागर में डूब गए कि इस बार गुरु जी नग्न तलवार लेकर बाहर नहीं निकले थे; अपितु उनकी तलवार म्यान में थी और उनके साथ उन जैसा ही रूपधारी, उन जैसा ही सुनहरी केसरी लिबास पहने, पांच अन्य सिक्ख थे।

उन्होंने एक सरबलोह का कटोरा मंगवाया, उसमें शुद्ध जल डाला। कटोरे के पास वीर-आसन में बैठकर खण्डा फेरने लगे और साथ-साथ वाणी का पाठ उच्चरित करते गए। जब वह अमृत जिसमें दिव्य वाणी व गुरु जी की आत्मिक शक्ति घुल गई तो माता साहिब देवां ने इसमें पताशे

डाल दिए। जब यह पताशे भी पूर्ण रूप में घुल गए तो गुरु जी कटोरा लेकर खड़े हो गए। उन्होंने पांच प्यारों को वीरासन में बैठने को कहा। कटोरे क़ा अमृत उन्होंने पांचों सिक्खों को पान करवाया व उस अमृत के छींटे उनके नेत्रों व शरीर पर मारे। फिर उन्होंने अमृत को उनके केशों व जूड़े में डाला।

पांचों सिक्खों को अमृतपान करवा कर गुरु जी ने उन्हें आदेश दिया कि वह अपने हाथों से उन्हें अमृतपान करवाएं।

फिर उन पांच प्यारों ने गुरु जी को अमृत पान करवाया। गुरु जी ने फिर फुरमाया, "आज से आप सभी शेर हो, आज से आपकी समस्त जाति-पाति समाप्त हो गई है, आज से आपकी जाति खालसा है और आप सभी 'सिंघ' हो। इसलिए आपके नाम के साथ 'दास, चंद, राम' इत्यादि नहीं लगेगा अपितु प्रत्येक नाम के साथ सिंघ लगेगा; इस तरह उन्होंने पांचों सिक्खों के नामों के साथ सिंघ लगाकर वह स्वयं भी गोबिंद राय से गुरु गोबिंद सिंघ हो गए।

तदुपरांत उन्होंने पांच प्यारों को अमृत तैयार करने के लिए कहा और वह अमृत शेष संगत को पान करवाया गया। इस तरह कुछ दिनों में लाखों सिक्ख अमृतपान करके सिंघ सुशोभित हो गए।

प्रत्येक सिक्ख को उन्होंने पांच कक्कार प्रदान किए और इन कक्कारों को हर समय साथ रखने का आदेश दिया। यह पांच कक्कार हैं– केश, कंघा, कड़ा, कच्छरा और कृपाण।

जिन पांचों सिक्खों ने गुरु जी को अपने शीश भेंट किए थे, गुरु जी ने उन्हें पांच प्यारे कहकर सम्मानित किया। यह पांच प्यारे भी सिक्ख धर्म के साथ ही अमर हो गए हैं। आज कहीं भी अरदास हो तो इन पांचों प्यारों को अवश्य स्मरण किया जाता है। इन पांचों प्यारों का नाम, चार साहिबज़ादों से भी पहले आता है।

गुरु जी ने अमृतपान करवाने में स्त्री-पुरुष के बीच कोई भेदभाव न किया। जो पुरुष अमृतपान करते थे, उनके नाम के पीछे सिंघ लग जाता था और स्त्रियों के नाम के पीछे कौर लग जाता है। अमृतपान करके अबला एवं निर्बल स्त्रियां भी शेरनियां बन जाती हैं।

उस समय माझे की संगत का एक जत्था आनंदपुर की ओर जा रहा था। उस जत्थे के साथ एक दीप कौर नामक महिला भी थी। यह जत्था गांव तलबन के समीप एक कुएं पर बैठ कर जलपान करने लग गया। लेकिन उस महिला को चूंकि प्यास नहीं थी, वह नाम का सिमरन करती धीरे-धीरे आगे चलती गई। किन्तु अभी वह थोड़ा ही दूर आगे गई थी कि चार मुसलमान लुटेरों ने उसे अकेली समझ कर आ दबोचा। वह भयभीत नहीं हुई, उसने तुरंत अपने हाथ से एक कंगन उतार कर दूर फैंका तो जब एक लुटेरा उस कंगन को पकड़ने लगा तो उसने निमेष मात्रा में तलवार निकाल कर उसकी गर्दन उतार दी। दूसरे लुटेरे अचानक भयभीत हो गए। वह अपनी कमरबंध में से अभी छुरे निकालने ही लगे थे कि उसने दो अन्य लुटेरों का वध कर दिया। चौथा जब भागने लगा तो उस पर भी उसने ज़ोर से वार किया, लेकिन वह बच गया और दीप कौर से हाथापाई हो गया और उसके तलवार वाले हाथ को उसने रोक लिया। लेकिन दीप कौर में अमृत की दिव्य शक्ति चण्डी का रूप धारण कर गई थी, उसने निमेष मात्र में उसे नीचे फैंक कर उसकी छाती पर बैठकर तलवार उसकी छाती में भोंक दी।

पहाड़ी राजे गुरु जी की खालसई सेना को देखकर खीझ गए व इकट्ठे होकर युद्ध हेतु तैयार हो गए। लेकिन जब मैदानी लड़ाई में पहाड़ियों को बहुत मार पड़ी तथा रंघड़ एवं गुज्जर मैदान छोड़कर भाग गए। अंततः पहाड़ी राजाओं ने आनंदपुर शहर के आसपास घेरा डाल लिया। उन्होंने

महीने तक घेरा डालकर रखा लेकिन कुछ हासिल न हुआ। अंततः उन्होंने सोचा कि किसी तरह किले का दरवाज़ा तोड़ा जाए।

उन्होंने एक हाथी को काफी भांग व मदिरा पिलाई। उसका सारा शरीर लोहे के कवचों से ढक दिया। उसके माथे पर लोहे की ढालें व अन्य शस्त्र बांध दिए। हाथी को अपनी पहाड़ी सेना के आगे लगाकर दरवाज़े की ओर धकेल दिया।

गुरु साहिब को जब पता चला कि मस्त हाथी किले का गेट तोड़ने हेतु आ रहा है तो उन्होंने अपने एक परखे हुए शूरवीर भाई बचित्र सिंघ की जिम्मेदारी लगाई कि वह मस्त हाथी से मुकाबला करे।

भाई बचित्र सिंघ अथाह बलवान, योद्धा एवं दिलेर था। गुरु जी ने उसे एक शक्तिशाली घोड़ा दिया और एक नागनी बर्छा सौंपा।

भाई बचित्र सिंघ अकालपुरुष एवं गुरु जी का नाम लेकर किले में से बाहर आ गया। मस्त हाथी गेट की ओर झूमता आ रहा था। भाई साहिब ने घोड़े को एड़ी लगाकर हाथी की ओर बढ़ाया व निकट जा कर रकाबों पर भार डालकर पूरे ज़ोर से बर्छा हाथी के माथे पर मारा। नागनी फौलादी बर्छा हाथी की ढालों को बेधता हुआ उसके माथे में धंस गया। हाथी को जब पीड़ा हुई और जब उसने अपने सामने एक शेर जैसे गर्जते हुए सिंघ को देखा तो वह चिंघाड़ता हुआ पीछे की ओर भागा। हाथी अपनी सेना को कुचलता जिधर मुंह हुआ, उधर ही भागा जा रहा था। उसके पीछे गर्जता हुआ भाई बचित्र सिंघ घोड़े पर सवार यूं चिल्ला रहा था जैसे वह अपने खेत में से किसी सूअर को भगा रहा हो। उधर सिक्ख सेना भी तैयार बैठी थी, जब उन्होंने हाथी को भागता हुआ देखा तो वह ललकारते हुए पहाड़ियों पर आक्रमण करने लगे। पहाड़ियों को तो अब पता ही नहीं लग रहा था कि कहां छिपे, चारों तरफ अपने प्राण बचाते हुए भाग गए। कई राजे प्राण त्याग गए और अनेक पहाड़िए घायल हो गए। गुरु साहिब भाई बचित्र सिंघ की इस वीरता पर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे शाबाशी दी।

पहाड़ी राजाओं की विनती पर औरंगजेब ने शाही सेना को पहाड़ियों की सहायता हेतु भेजा, लेकिन उसके हाकिमों को बार-बार पराजय का मुंह देखना पड़ता था।
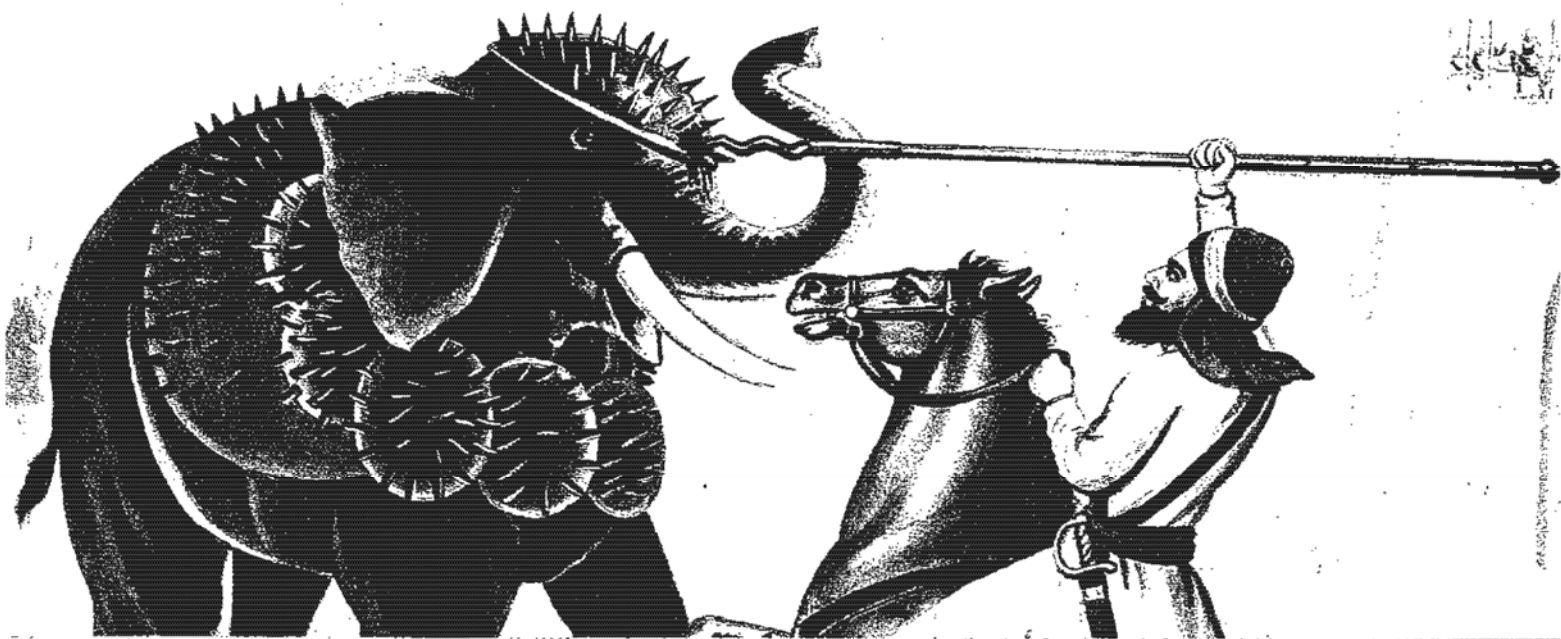
औरंगजेब ने इस पराजय से खीझ कर एक बड़ी सेना देकर आनंदपुर को विजय करने हेतु भेजा। इस तरह एक बड़ी लड़ाई आरम्भ हो गई। दोनों तरफ सैकड़ों घायल होते थे अथवा मरते थे।

इन लड़ाइयों में एक ऐसा इन्सान भी था जो लड़ता नहीं था अपितु घायलों की सेवा संभाल करता था। यह गुरमुख सिक्ख भाई घनईया जी था। वह गांव सोदरा ज़िला गुजरांवाला का रहने वाला था। बड़े शांत स्वभाव एवं भजनीक होने के कारण उनका मन हत्याकांड में नहीं लगता था। उन्होंने मरहम पट्टी व घायलों का उपचार करने का कार्य सीखा था। सिंघों की लड़ाइयों में जब वह घायल व तड़पते शूरवीरों को देखते तो उनका मन द्रवित हो जाता था। अतः जहां भी युद्ध होता था, वह अपने साथियों को लेकर पानी की मशकें भर कर घायलों को पानी पिलाते और मरहम पट्टी करते।

एक बार कुछ सिक्खों ने गुरु साहिब के पास जाकर शिकायत की कि भाई घनईया शत्रुओं की मदद करता है। वह शत्रु सेना के घायलों को जल पिलाता है और मरहम पट्टी करता है और कई स्वस्थ होकर पुनः हमारे साथ लड़ने लग जाते हैं।

गुरु जी ने भाई घनईया को बुलाया व सिक्खों की शिकायत बारे पूछा। भाई घनईया ने निवेदन किया, "हे सच्चे पातशाह! मुझे घायल हुए सभी व्यक्ति आप जी का रूप ही दिखते हैं। इसलिए मैं न तो किसी शत्रु अथवा मित्र की सेवा करता हूँ, अपितु मैं तो हर वक्त आपकी ही सेवा करता हूँ।"

भाई घनईया के इस उत्तर से गुरु जी बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे शाबाशी दी और कहा, "भाई घनईया तू धन्य हैं, तूने अपना जन्म सफल कर लिया है।" उन समयों में रैडक्रास इत्यादि
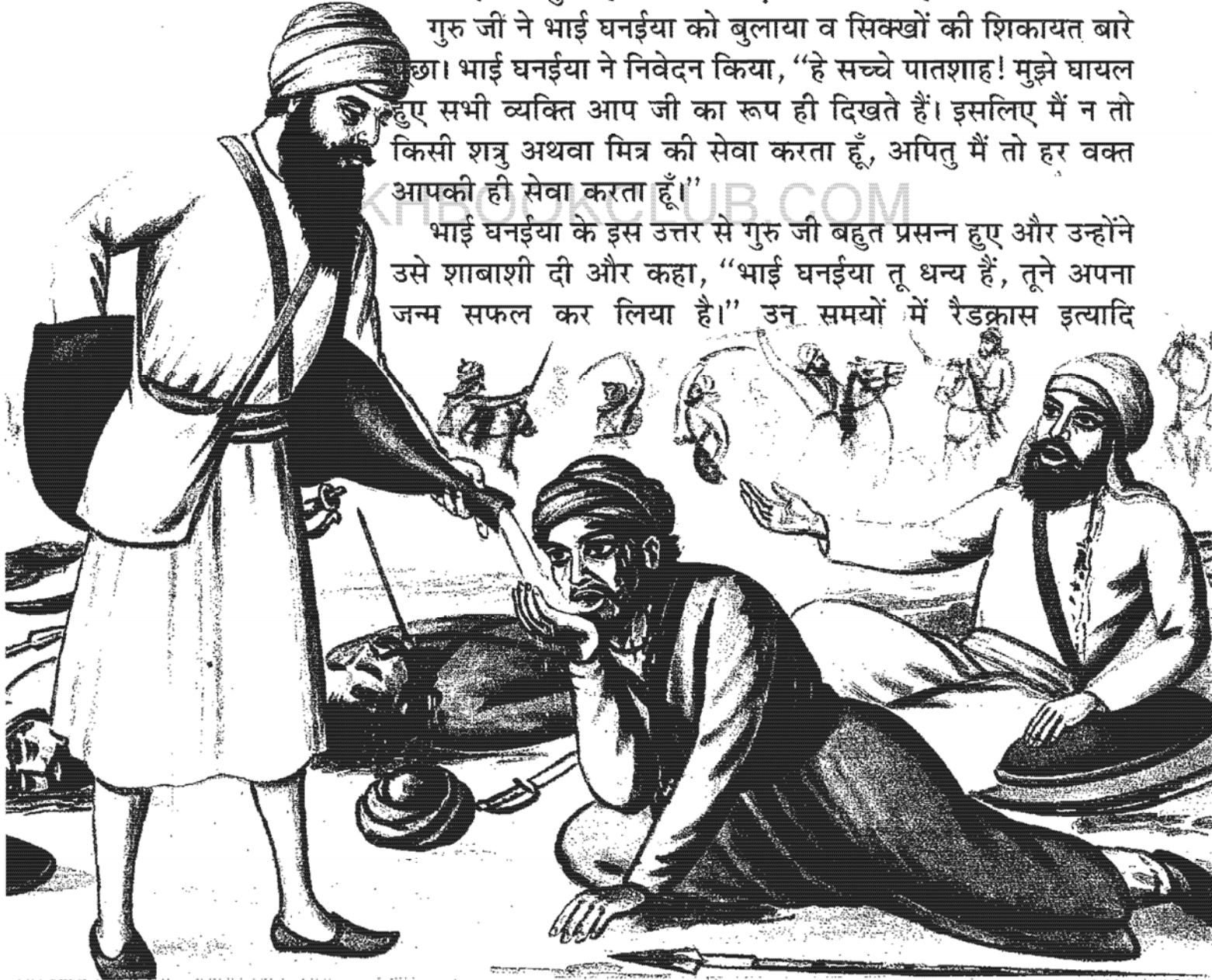
सोसाइटियां नहीं होती थीं, जो घायलों एवं बीमारों की सेवा संभाल कर सकतीं, इसलिए भाई घनईया को रैडक्रास का संस्थापक समझा जाता है।

जब शाही सेना को खुली लड़ाई में बार-बार पराजय का मुंह देखना पड़ा तो उन्होंने सोचा कि किसी तरह आनंदपुर के किले को घेर लिया जाए एवं किले का भोजन पदार्थ बंद करके सिक्ख सेना को हथियार फैंकने के लिए विवश किया जाए।

जब यह घेरा काफी दिन चलता रहा तो किले के वासियों को काफी मुसीबतों का सामना करना पड़ा। जब पहाड़ियों व मुगलों को इस बारे संकेत मिले तो उन्होंने गाय व कुरान की कसमों के किले में संदेश भेजे कि सिक्ख किला छोड़ कर चले जाएं, वह उन्हें कुछ नहीं कहेंगे। सिक्खों ने भी गुरु जी को यह सलाह मानने हेतु कहा, लेकिन गुरु जी ने उन्हें समझाया कि इन पहाड़ियों व मुगलों पर किसी प्रकार का भी यकीन नहीं किया जा सकता। परन्तु संगत के ज़ोर देने पर उन्होंने भी एक चाल खेली। उन्होंने किले में जो भी गंदगी, पुराने वस्त्र व पुराने जूते पड़े थे, घोड़ों व बैलों की पीठ पर रखकर उनके सिर पर मशालें बांधकर कीमती सामान के रूप में किले से बाहर भेज दिए। सैनिकों ने जब यह कीमती सामान जाता देखा तो वह टूट कर पड़ गए लेकिन जब उन्होंने गंदगी से भरे छकड़ों को फोला तो वे बहुत लज्जित हुए। सिंघों ने भी गुरु जी की इस चाल से सबक लिया और उनको दृढ़ विश्वास हो गया कि इन शत्रुओं पर भरोसा नहीं किया जा सकता।

अंततः सिक्खों की दयनीय दशा देखकर एवं झूठी कसमों पर भरोसा करके गुरु जी ने किला खाली कर दिया और चमकौर पहुंच गए।
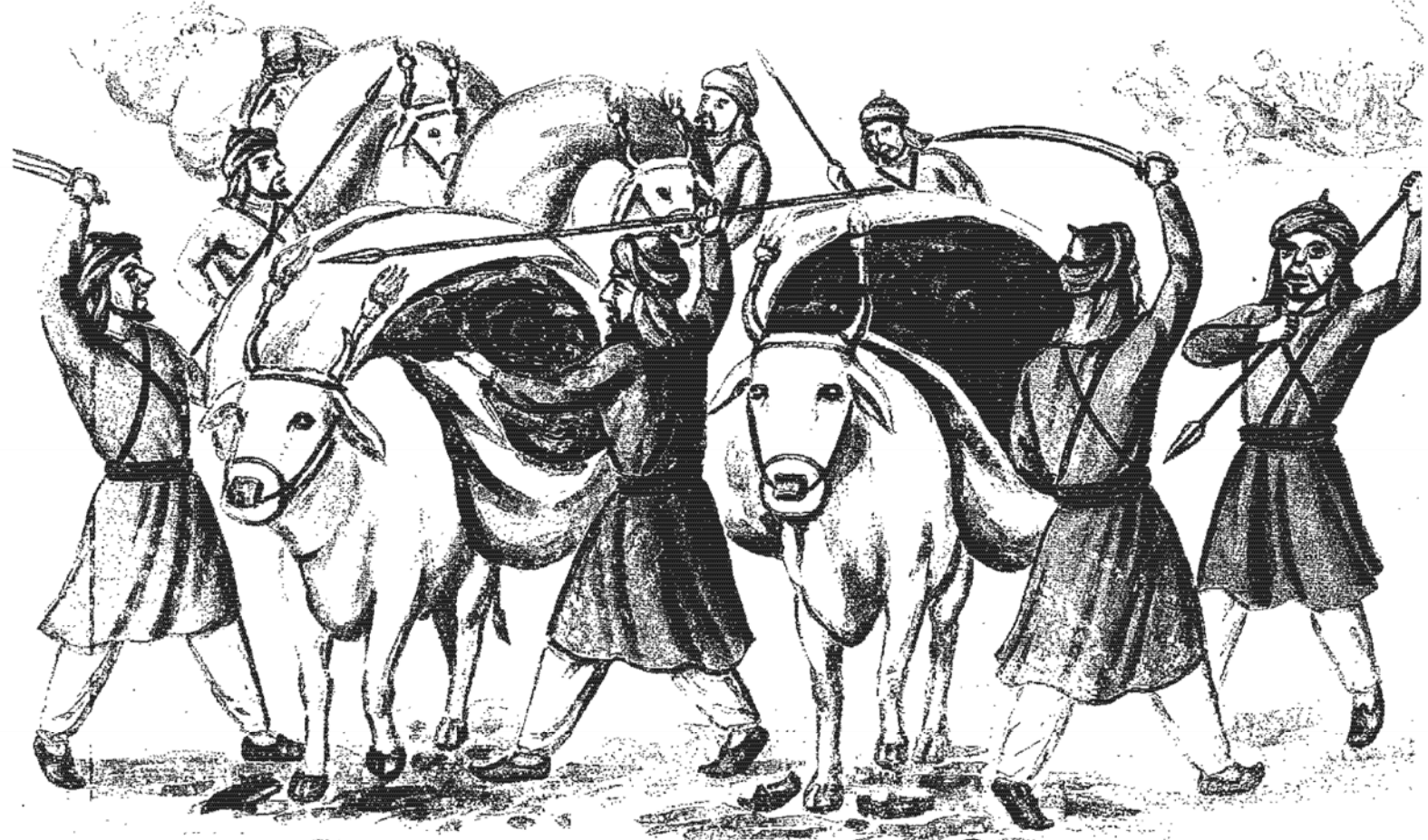
गुरु जी कच्चे दुर्ग में मोर्चा लगाकर बैठ गए। रात्रि होते ही दस लाख के करीब शाही सेना ने दुर्ग को आकर घेर लिया। गुरु जी के पास केवल चालीस-पच्चास सिक्ख थे। शत्रुओं के आगे यह तुच्छ संख्या क्या कर सकती थी। लेकिन जब वह दुर्ग के समीप पहुंचे तो सिंघों ने बंदूकों व तीरों की बौछार कर दी, कुछ मिनटों में ही सैकड़ों शत्रु ढेर हो गए। गुरु जी चुनिंदा व चोटी के शूरवीरों को चुन-चुन कर मार रहे थे।

अंत में शाही सेना ने दुर्ग का दरवाज़ा तोड़ने का निर्णय किया, परन्तु गुरु जी पांच सिक्खों का एक जत्था मुकाबला करने के लिए भेजते जो सैकड़ों शत्रुओं को कुचलते हुए शहीद हो जाते। इस तरह बाबा अजीत सिंघ और बाबा जुझार सिंघ गुरु जी से आज्ञा प्राप्त करके शत्रुओं का संहार करते हुए शहीदी प्राप्त कर गए। फिर जब पांच प्यारे ही रह गए तो उन्होंने गुरमत्ता करके गुरु जी को विवश किया कि वह किला छोड़कर चले जाएं और खालसे का नेतृत्व करें। पांच प्यारों की आज्ञानुसार गुरु जी भाई दया सिंघ, भाई धर्म सिंघ सहित किले से बाहर आ गए। भाई संगत सिंघ जिनकी शक्ल गुरु साहिब से मिलती थी, को अपने स्थान पर बिठा दिया और अपनी तरफ से उसे कुछ तीर भी दिए।

गुरु जी चलते-चलते माछीवाड़े पहुंचे, जहां उन्होंने एक कुएं से पानी पिया और वहां विश्राम करने के लिए सो गए। यहीं भाई दया सिंघ, भाई धर्म सिंघ व भाई मान सिंघ उन्हें आ मिले। गुरु जी माछीवाड़े अपने एक मसंद गुलाबे के घर चले गए। फिर वह नबी खां व गनी खां की विनती पर उनके घर चले गए।

एक माई ने गुरु जी को एक खद्दर का थान भेंट किया था। उन्होंने सलाह दी कि इस खद्दर को नीला रंगा जाए। उस नीले खद्दर के गुरु जी व शेष सिक्खों के पहरावे तैयार किए गए। यह पोशाक पहन कर गुरु जी व उनके साथियों ने अपने केश पीछे फैंक लिए। इस तरह वेष धारण करके गुरु जी एक पालकी में बैठ गए। भाई धर्म सिंघ, भाई मान सिंघ, गनी खां व नबी खां ने पालकी को कंधों पर उठा लिया और भाई दया सिंघ पीछे चंवर करता जाता था। जो भी कोई पूछता था, उसे

यही बताते थे कि वह अपने उच्च के पीर को ले जा रहे हैं। चलते-चलते गुरु जी रायकोट में भाई राय कल्ला के पास ठहरे। वह मुसलमान जाट था लेकिन गुरु जी का बड़ा श्रद्धालु था। उसने गुरु साहिब की भरपूर सेवा की। गुरु जी के कहने पर उसने अपने नौकर नूरे को सरहिन्द भेजा ताकि वह माता गुजरी व छोटे साहिबज़ादों बारे समाचार लेकर आए। नूरा शीघ्र ही वापिस आ गया और उसने बताया कि दोनों साहिबज़ादों को सरहिन्द के नवाब ने शहीद कर दिया है और माता गुजरी साहिबज़ादों की शहीदी का हाल सुनकर अपने पौत्रों के पास पहुंच गए हैं।

गुरु साहिब रायकोट से चलकर गांव दीने कांगड़ आ गए। यहां गुरु हरिगोबिंद साहिब के एक गुरसिक्ख राय जोध के तीन पौत्रे रहते थे। इन तीनों भाइयों के नाम थे– शमीरा, लखमीरा व तख्त मल। जब इन्हें गुरु साहिब के आगमन का पता चला तो यह उन्हें अपने घर ले आए और बहुत सेवा की। यह बहुत बहादुर थे और किसी मुगल अथवा सरहिन्द के सूबे से डरते नहीं थे। यहां दीने गांव में ही गुरु जी ने जफरनामा भाव विजय की चिट्ठी लिखी।

माझे में ही जब यह संदेश पहुंचा तो शूरवीर सिंघों में जोश भर गया। झब्बाल की रहने वाली एक माई भागो पुरुषों वाली वेशभूषा पहन कर तलवार नेज़ा लेकर घोड़े पर सवार हो गई। उसके साथ ही सुर सिंघ का रहने वाला भाई महां सिंघ, सिंघों का एक बड़ा जत्था लेकर तैयार हो गया। इस क्षेत्र के सिंघों को जब गुरु जी के परिवार के बलिदान का पता चला तो वह बहुत क्रोध में आ गए थे। इससे पूर्व कि वह एक बड़ी सेना एकत्रित करते, वह सिंघों का जत्था लेकर शीघ्र ही खिदराने की ढाब पर जा पहुंचे। यहां इन्होंने गुरु साहिब के दर्शन किए और गुरु साहिब से क्षमा मांगी कि वह पूर्व युद्धों में गुरु साहिब का साथ नहीं दे सके। गुरु साहिब बेशक माझे में नहीं गए थे, लेकिन माझे के सिंघों की वीरता की वह कद्र करते थे। जब उन्होंने माई भागो को शूरवीरों की वेशभूषा में देखा तो वह कृतार्थ हो गए, "अब खालसे को कोई नहीं हरा सकता।"

उन्हें शीघ्र ही पता चला कि मुगल सेना उनके बिल्कुल समीप आ गई है। माई भागो और भाई महां सिंघ ने गुरु जी के पास प्रार्थना की कि गुरु जी अपने अन्य सिंघों को साथ लेकर ऊंचे टिल्ले पर पहुंच जाएं, शत्रु के प्रथम आक्रमण का वह मुकाबला करेंगे। शत्रु इतना लम्बा जंगल गुजरता हुआ काफी थका व भूखा-प्यासा होगा।

यहां बड़ी भयानक लड़ाई हुई, मुगल सेना बहुत प्यासी थी, इस कारण ज्यादा देर मुकाबला करना उनके लिए मुश्किल हो गया और वह वापिस भाग गए। जब लड़ाई खत्म हो गई और शत्रु की सेना भाग गई तो गुरु जी रणभूमि पर आए और शहीद हुए सिंघों का मुंह पोंछते, प्यार करते और वर की कृपा करते। इस तरह करते वह उस स्थान पर भी आए जहां माई भागो घायलावस्था में पड़ी थी। गुरु जी ने अपनी इस शूरवीर पुत्री का मुंह साफ किया, उसके घावों को साफ करके मरहम लगाई और उसके मुंह में जल डाला। इस युद्ध में कुल चालीस सिंघ शहीद हुए थे, गुरु जी ने उन्हें मुक्ते की पदवी प्रदान की। तदुपरांत वही स्थान मुक्तसर के रूप में प्रगट हुआ।

खिदराने से चलकर लक्खी जंगल में कुछ समय विश्राम करके गुरु जी तलवंडी साबो पहुंचे। यहां एक गुरु का सिक्ख भाई डल्ला रहता था। वह बड़ा धनवान था और इसके पास हज़ारों नौकर-चाकर सेवा हेतु उपस्थित रहते थे। तलवंडी पहुंचने पर इसने गुरु साहिब का बहुत आदर-सत्कार किया। गुरु जी की प्रेरणा से अमृतपान करके यह डल्ले से डल्ला सिंघ बन गया। डल्ला सिंघ का अपने क्षेत्र में बहुत प्रभाव था। इस कारण नवाब सरहिन्द उससे भयभीत था। गुरु साहिब यहां लगभग नौ महीने रहे और यहां माता सुन्दर कौर व माता साहिब कौर आप जी को आ मिले।

यहां शांत वातावरण मिलने के कारण गुरु जी ने अधिकतर समय पढ़ाई-लिखाई में लगा दिया। यहां बड़े-बड़े विद्वान एकत्र हो गए और आनंदपुर साहिब की तरह ही यह स्थान भी विद्या का केन्द्र बन गया। यहां ही उन्होंने गुरु ग्रंथ साहिब को अन्तिम रूप दिया। गुरु ग्रंथ साहिब जी की कई बीड़ें तैयार करवाईं।

दमदमा साहिब से गुरु जी दक्षिण की ओर चल पड़े। जब गुरु जी नांदेड़ पहुंचे तो वह भी अपने कुछ सिंघों को साथ लेकर माधोदास के डेरे पहुंच गए। बैरागी माधोदास उस समय डेरे में नहीं था, उसका सुंदर पलंग अंदर बिछा हुआ था। गुरु जी किसी को पूछे बिना ही डेरे के अंदर गए और सुंदर पलंग पर जा विराजे। जब उसके शिष्यों ने कुछ विरोध किया तो सिंघों के आठ-आठ फुट लम्बे बरछों व नेज़ों को देखकर भाग गए। वह तुरंत ही माधोदास बैरागी को ले आए। माधोदास बैरागी को स्वयं पर बहुत अभिमान था। उसने अपनी समस्त ऋद्धियां-सिद्धियां इस्तेमाल कीं लेकिन वह गुरु साहिब के पलंग को न हिला सका। तदुपरांत वह गुरु जी के चरणों पर आ लगा और गुरु जी ने उसे अपना सिक्ख बना लिया व बैरागी माधोदास, एक महान सूरमा बंदा सिंघ बहादुर बन गया।

गुरु जी ने उसे पंजाब के समस्त हालात बताए और कहा कि तेरी इस कुटिया की पवित्रता का क्या लाभ, यदि पंजाब में घर-घर विलाप हो रहे हों। बंदे में जोश भर गया और वह बार-बार निवेदन करने लगा कि मुझे आज्ञा दीजिए, मैं पंजाब में जाकर उन अत्याचारियों का रक्त पी लूंगा।

जब वह गुरु जी की कसौटी पर पूरा उतरा तो गुरु जी ने पांच सिंघ बाबा विनोद सिंघ, बाबा कान्ह सिंघ, बाबा बाज़ सिंघ, बाबा दया सिंघ व बाबा रण सिंघ उसके सलाहकार नियुक्त किए।
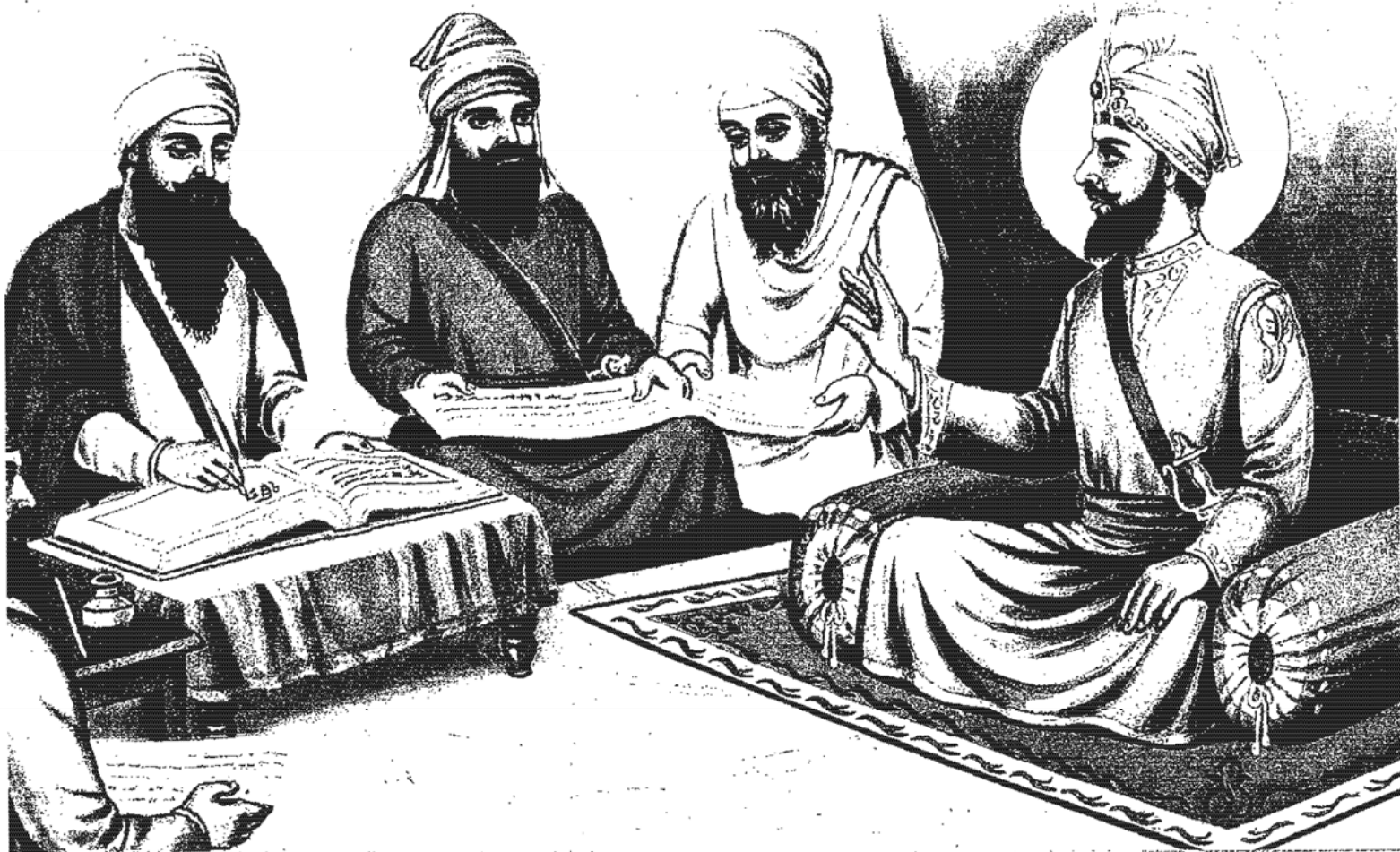
अपने तर्कश में से उसे पांच तीर दिए और आदेश किया कि जो कुछ करना है, इन पांच सिंघों की सलाह से ही करना है। सबसे आवश्यक है कि ब्रह्मचार्य रखना, पराई नारी को माता-बहन समझना, सिक्खी मर्यादा में दृढ़ रहना, मन, वचन व कर्म के कारण पवित्र रहना, स्वयं को पंथ का दास समझना, स्वयं को गुरु मत कहलाना और पांच प्यारों के आदेश को गुरु का आदेश समझना।

बंदा सिंघ बहादुर ने यह सब कुछ स्वीकार किया और गुरु साहिब के समक्ष माथा टेक कर चुनिंदा सिंघ लेकर पंजाब की ओर चल पड़ा।

सरहिन्द का नवाब वज़ीर खां, बादशाह बहादर शाह व गुरु साहिब में समीपता होने के कारण बहुत घबरा गया था। वह डरता था कि गुरु साहिब के मासूम बच्चों को कत्ल करने के जुर्म में उसे सज़ा मिलेगी। इसलिए गुरु साहिब के पंजाब आने से पूर्व ही वह उन्हें किसी तरह खत्म करना चाहता था।

पहले उसने एक पठान भेजा कि वह गुरु साहिब को छल-कपट से मार्ग में समाप्त कर दे, लेकिन वह सफलता प्राप्त न कर सका। फिर उसने जमशेद खां व गुल मुहम्मद खां नाम के दो पठानों को भेजा। इन पठानों ने पहले माता सुंदर कौर के पास पहुंच कर गुरु जी के टिकाने का पता किया और फिर वह नांदेड़ की ओर चल पड़े।

जिस समय वह नांदेड़ पहुंचे तो उस समय गुरु साहिब पंजाब वापिस आने की तैयारियां कर रहे थे। इसलिए उन्होंने मन बनाया कि जितना जल्दी हो सके, गुरु साहिब को समाप्त किया जाए।

गुरु साहिब का विश्वास जीतने के लिए वह नित्य गुरु साहिब के दरबार में आने लगे और सामान्य सिंघों से घुलमिल गए। एक दिन अवसर पाकर वह गुरु साहिब के तंबू में बैठ गए। गुरु साहिब के पास एक सेवक मौजूद था। जब वह कुछ काम के लिए बाहर गया तो जमशेद खां ने तुरंत ही अपनी कटार से गुरु साहिब के उदर पर वार किया। अभी वह दूसरा वार करने ही वाला था कि गुरु साहिब ने अपने सिरहाने पड़ी तलवार पकड़ कर उसका वध कर दिया। गुरु जी के कुछ समय पश्चात ही घाव भर गए और गुरु साहिब ठीक हो गए। गुरु साहिब की कुशलता की खबर सुनकर बहुत दूर-दूर से सिक्ख श्रद्धालु आने लगे। लेकिन एक दिन जब गुरु जी तीरकमान की डोर खींचने लगे तो घाव फिर फट गए। गुरु साहिब ने अब अनुभव कर लिया था कि उनका अन्तिम समय निकट आ गया है।

उन्होंने समस्त संगत को बुलाकर धैर्य दिया और जो गुरु ग्रंथ साहिब वह साथ लेकर गए थे, उसके आगे पांच पताशे व एक नारियल रखकर माथा टेक दिया। उन्होंने समस्त संगत को बताया कि आज से आपका शब्दी गुरु ग्रंथ साहिब है, जो भी प्रभु को पाना चाहेगा एवं इस दुनिया के भवसागर को पार करने की लालसा करेगा, वह गुरु ग्रंथ साहिब में से लिए शब्द के अभ्यास से पार हो जाएगा।

उन्होंने कहा जो गुरु ग्रंथ साहिब के दर्शन करेगा, उसे गुरु साहिब के भरपूर दर्शन होंगे। आज भी अरदास के समय हम गुरु जी के आदेश वाले वह वाक्य पढ़ते हैं, जिन में गुरु द्वारा हमें गुरु ग्रंथ साहिब मानने की आज्ञा हुई है।
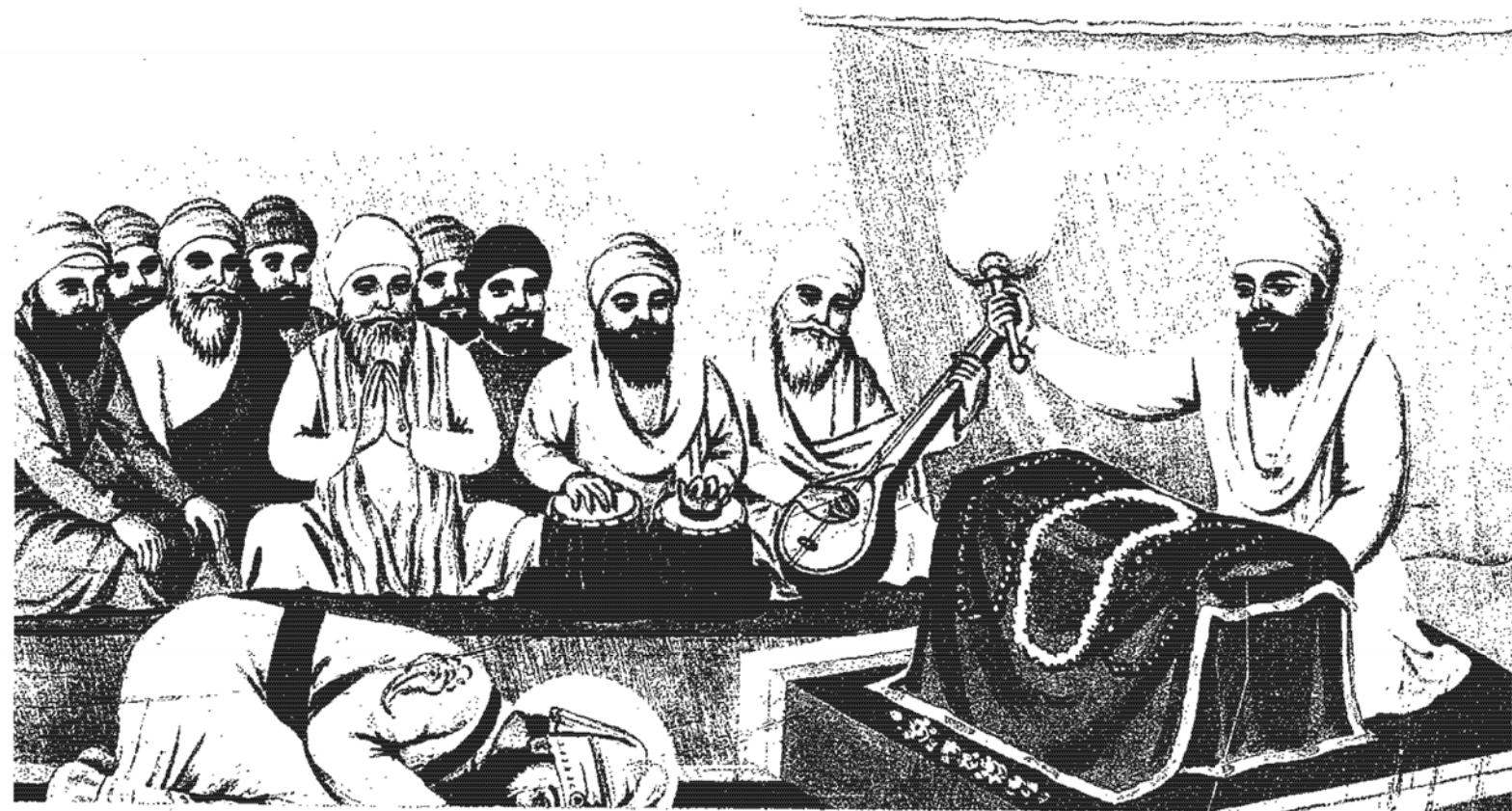
प्रश्न-उत्तर

1. गुरु नानक देव जी के माता-पिता का क्या नाम था ?
2. उस दाई का क्या नाम था, जो गुरु नानक देव जी के अवतार धारण समय उपस्थित थी ?
3. ज्योतिष लगाते समय पंडित हरिदयाल ने क्या भविष्यवाणी की ?
4. तलवंडी के हाकिम का क्या नाम था ?
5. उस वैद्य का क्या नाम था, जो गुरु नानक देव की नब्ज देखने आया था ?
6. गुरु नानक देव जी के सुल्तानपुर में मोदी बनने के समय नवाब कौन था ?
7. गुरु जी की उदासियों (लंबी यात्राओं) के समय उनके साथ कौन-कौन था ?
8. गुरु नानक देव जी के समय किस बादशाह ने भारत पर आक्रमण किया ?
9. गुरु नानक देव जी ने अपना उत्तराधिकारी किसे चुना ?

10. गुरु नानक देव जी के बड़े साहिबज़ादे का क्या नाम था ?
11. उस क्षेत्र का क्या नाम है, जहां बैठ कर गुरु अंगद देव जी ने सिक्खी का प्रचार किया ?
12. गुरु अंगद देव जी ने अपनी गुरुयाई के समय कौन-से मुख्य कार्य किए ?
13. गुरु अंगद देव जी ने किसे अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया ?
14. गुरु अंगद देव जी की पत्नी का क्या नाम था ?
15. कौन-सा मुगल बादशाह गुरु अंगद देव जी को खडूर में आकर मिला ?
16. कौन-सा मुगल बादशाह गुरु अमरदास जी को गोइंदवाल में आकर मिला ?
17. गुरु अमरदास जी के बड़े साहिबज़ादे का क्या नाम था ?
18. अमृतसर नगर को किसने बसाया ?
19. किस गुरु साहिब को बाबा श्री चंद जी मिले ?

20. किस गुरु साहिब ने गुरु ग्रंथ साहिब जी का संपादन किया ?

21. सिक्खों के छठे गुरु साहिब का क्या नाम था ?

22. श्री हरिमन्दिर साहिब की आधारशिला किसने रखी ?

23. सिक्खों के सातवें गुरु साहिब कौन थे ?

24. आठवें गुरु जी कहां ज्योति ज्योत समाए ?

25. किसने ऐलान किया कि उसने नौवें गुरु जी को ढूंढ लिया है ?

26. गुरु तेग बहादुर जी ने किस कारण शहीदी प्राप्त की ?

27. उस शहर का क्या नाम है, जिसे गुरु तेग बहादुर जी ने बसाया ?

28. उन सिक्खों के क्या नाम हैं, जिन्होंने गुरु तेग बहादुर जी के साथ शहीदी प्राप्त की ?

29. गुरु गोबिंद सिंघ जी ने कहां अवतार धारण किया ?

30. गुरु गोबिंद सिंघ जी ने कैसे खालसे की सृजना की ?

31. पांच प्यारों के नाम बताओ ?

32. पांच कक्कारों के नाम बताओ ?

33. गुरु गोबिंद सिंघ जी के उत्तराधिकारी का नाम बताओ ?

34. गुरु गोबिंद सिंघ जी के चार साहिबज़ादों के नाम लिखो ?

35. गुरु गोबिंद सिंघ जी के माता जी का क्या नाम था ?

36. दस गुरु साहिबान के नाम बताओ ?

37. नांदेड़ से गुरु गोबिंद सिंघ जी ने कुछ सिक्खों को पंजाब की ओर भेजा, उन सिक्खों का जत्थेदार कौन था ?

38. गुरु गोबिंद सिंघ जी ने श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी को कहां पुनः संपादित किया ?

39. गुरु ग्रंथ साहिब का संपादन करते समय कौन-से सिक्खों ने उनकी सहायता की ?

40. जिस गुरु ग्रंथ साहिब को गुरु अर्जुन देव ने संपादन किया था, उसका लिखारी कौन था ?